प्रौढ़ शिक्षा

जनवरी–मार्च 2019
वर्ष 63 अंक–1

सम्पादक मण्डल

प्रो. भवानीशंकर गर्ग
(संरक्षक)

श्री मृणाल पंत
श्री ए.एच.खान
डा. सरोज गर्ग
श्री दुर्लभ चेतिया
डा. डी.के.वर्मा
डा. उषा राय
डा. मदन सिंह
श्री एस.सी. खंडेलवाल
श्री राजेन्द्र जोशी

प्रधान संपादक
श्री कैलाश चौधरी

सम्पादक
डा. मदन सिंह

सहायक सम्पादक
बी. संजय

इस अंक में

संपादकीय

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की अनिवार्यता
– योगेन्द्र लाल दास 5

कौशल विकास और युवा शक्ति
–कल्पना कौशिक 13

डॉ. अम्बेड़कर द्वारा वर्ग सशक्तीकरण एवं शैक्षिक जागरूकता
– वीरेन्द्र जैन 18

प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग ही कर्मयोग है
– पुष्पा तिवारी 24

स्त्री–शिक्षा, मुक्ति और मानवाधिकार
–सरोज कुमार वर्मा 28

सीखने–सिखाने की हकीकत
–कालूराम शर्मा 37

हमारे लेखक 40

मूल्यः रूपये 200/–वार्षिक

पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचार उनके वैयक्तिक विचार हैं, जिनके लिए संघ एवं सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है ।

New Publication

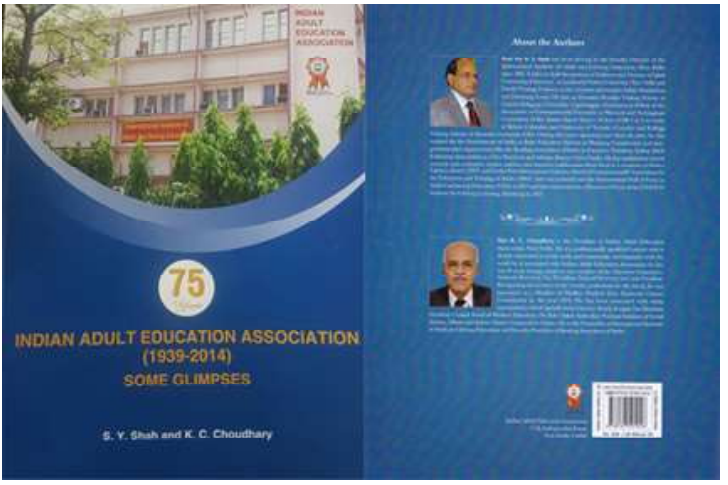

This book is authored by Prof. S.Y.Shah and Shri K.C.Choudhary. It is a coffee table publication of 228 pages with a lot of photographs. It has three parts – Part – I: Origin and Organizational Set-up, Part – II: Glimpses of Select Programmes of IAEA which contains 12 sub-heads (Knowledge Sharing: Conferences, Seminars and Workshops, Knowledge Generation: Research & Evaluation, Capacity Building Programmes: Training, Orientation and Short Courses, Extension and Outreach Programmes, Memorial Lectures: Dr. Zakir Husain, Dr. Robby Kidd and Dr. James A. Draper, Literacy Awards and Honours, Advocacy and Networking, International Links, International Institute of Adult and Lifelong Education, Reading Association of India, Amarnath Jha Library and National Documentation Centre and Publications: Books, Journals and Newsletters) and Part – III which contains 7Annexure (List of Past Presidents, Vice Presidents, Secretaries and Treasurers, Album of Key Persons who served IAEA, List of All India Adult Education Conference, List of Evaluation Studies, Recipients of Nehru Literacy Award, Recipients of Tagore Literacy Award and List of Publications).

समझ से परे है यह मौन

दिनांक 14 दिसम्बर 2018 को नीति आयोग, भारत सरकार द्वारा ''एसडीजी इण्डिया इनडैक्सः बेस लाईन रिपोर्ट 2018'' प्रकाशित किया गया। ज्ञात है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की देख–रेख में संचालित होने वाला एसडीजी 2030 दुनिया भर के सभी लोगों एवं समुदायों के विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु चलाए गए विकास कार्यक्रमों का दूसरा चरण है जो एक जनवरी 2016 से लागू है। इन लक्ष्यों के लागू होने के लगभग 3 वर्ष बाद प्रकाशित यह रिपोर्ट एक राष्ट्र के रूप में भारत द्वारा दर्ज की गई उपलब्धियों को रेखांकित करता है।

यह सर्वविदित है कि एसडीजी 2030 के राह पर चलते हुए विश्व जिस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है उसका बहुत बड़ा दारोमदार भारत पर निर्भर है। विश्व की लगभग 17.74 प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाले भारत की उपलब्धियों का सीधा असर वैश्विक उपलब्धियों पर पड़ेगा। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ–साथ भारत ने भी इन प्रयासों को बेहद संजीदगी से लिया है। इस दिशा में पहल करते हुए सितम्बर 2015 में विश्व के 193 देशों द्वारा स्वीकृत किए जाने के पूर्व ही भारत में 23 जुलाई 2015 में स्पीकर रिसर्च इनीशिएटिव (एसआरआई) की शुरूआत की गई ताकि एसडीजी 2030 को भारतीय संदर्भ में समझते हुए उन्हें प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सके। एसआरआई के तत्वाधान में नई दिल्ली में 5–6 मार्च 2016 को ''महिला सांसद और भारत का पुनरूत्थान'' विषय पर महिला सांसदों का राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया। 20–21 अगस्त 2016 को जयपुर में एसडीजी लक्ष्यों को प्राप्त करने मे सहयोगी महिला सांसद विषय पर आयोजित ब्रिक्स महिला सांसद मंच की बैठक आयोजित की गई तथा 18–19 फरवरी 2017 को इंदौर में इसी उद्देश्य से दक्षिण एशियाई देशों के स्पीकरों का सम्मेलन आयोजित किया गया। संसदीय स्तर पर आयोजित इन विमर्शों का व्यापक प्रभाव पड़ा।

भारत सरकार ने अपने दायित्व के अनुरूप इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए रणनीति निर्माण, क्रियान्वयन तथा निरीक्षण हेतु नीति आयोग का चयन किया। ज्ञात है कि एसडीजी 2030 के अंतगर्त कुल 17 लक्ष्यों का विवेचन किया गया है। नीति आयोग से यह अपेक्षा की गई कि इन 17 लक्ष्यों में से भारतीय संदर्भ में लागू होने वाले लक्ष्यों का चयन कर यह सुनिश्चित करे की इन सभी के बारे में हमारे पास पर्याप्त आंकडे हैं या नहीं, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके की हमारे प्रगति की गति क्या है। नीति आयोग ने एसडीजी 2030 लक्ष्यों की निगरानी के लिए श्री अनिल श्रीवास्तव (महानिदेशक, डी.एम.ई.ओ) तथा सुश्री संयुक्ता समादार (ओ.एस.डी., नीति आयोाग) के नेतृत्व में एक वर्कटिकल टीम की स्थापना की। इस टीम ने सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय के साथ मिल कर 9 फरवरी 2016 से 14 मार्च 2018 के बीच देश के विभिन्न भागों में 22 राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय विमर्श कार्यशालाओं का आयोजन किया तथा देश के सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए आवश्यक आंकड़े एकत्रित किए। नीति आयोग ने एसडीजी के कुल 17 में से 13 लक्ष्यों के लिए भारतीय संदर्भों के समकक्ष 62 सूचकांक विकसित किए। इतना ही नहीं नीति आयोग की टीम ने केन्द्र

एवं राज्य सरकारों द्वारा प्रायोजित उन सभी योजनाओं एवं कार्यक्रमों को संबंधित लक्ष्यों के संदर्भ में सूचितबद्ध किया। ''एसडीजी इण्डिया इनडैक्सः बेस लाईन रिपोर्ट 2018'' इन सभी तथ्यों एवं आंकड़ों को योजनाबद्ध तरीके से प्रस्तुत करती है जिससे यह ज्ञात होता है कि विगत 3 वर्षों में इन लक्ष्यों की राह पर भारत की कुल उपलब्धि क्या रही है। साथ ही साथ यह रिपोर्ट राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की उपलब्धियों के स्तर को भी रेखांकित करता है। इस रिपोर्ट के अनुसार राज्यों की उपलब्धि न्यूनतम 42 से अधिकतम 69 सूचकांक तथा केन्द्र शासित प्रदेशों की उपलब्धि न्यूनतम 57 से अधिकतम 68 सूचकांक तक है।

एसडीजी 2030 का चौथा लक्ष्य सर्वसमावेशी गुणवतापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की प्रतिबद्धता व्यक्त करता है। इस समूच्य के तहत दस अलग–अलग लक्ष्यों को प्राप्त करने की बात की गई है। अपने राष्ट्रीय संदर्भ एवं आंकड़ों की उपलब्धता के मद्देनजर भारत ने कुल सात सूचकांक विकसित किए हैं। ये सात सूचकांक सम्मिलित रूप से एसडीजी 2030 के चौथे समूच्य के तहत शामिल केवल दो मुख्य बिन्दुओं यथा – सभी बालक एवं बालिकाओं को माध्यमिक तक की गुणवतापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना तथा प्रशिक्षित शिक्षकों की आपूर्ति सुनिश्चित करना, पर भारत की प्रगति को रेखांकित करते हैं।

एसडीजी 2030 का लक्ष्य क्रमांक 4.6 प्रौढ़ एंव आजीवन शिक्षा के माध्यम से देश की सपूर्ण आबादी को साक्षर एवं शिक्षित बनाने तथा सभी नागरिकों के जीवन को गुणवतापूर्ण बनाने की प्रतिबद्धता जाहिर करता है लेकिन ''एसडीजी इण्डिया इनडैक्सः बेस लाईन रिपोर्ट 2018'' इस बात पर मौन है। उल्लेखनीय है कि यह दस्तावेज देश में प्रौढ़ असाक्षरता समाप्त करने के लिए साक्षर भारत कार्यक्रम का उल्लेख करता है लेकिन मानव संसाधन विकास मंत्रालय की सूचनाओं के अनुसार यह कार्यक्रम अपनी कार्यकाल पूरा कर चुका है जिसका सम्यक मूल्यांकन होना शेष है। प्रौढ़ शिक्षा के संदर्भ में यह दस्तावेज किसी विशेष सूचकांक का उल्लेख भी नहीं करता जो चिंता जनक है। इस लम्बे दौर में सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर न जाने कितने अध्ययन कराए गए हैं, क्या ये सभी अध्ययन किसी प्रकार के आंकड़े उपलब्ध नहीं कराते ? आखिर विगत 48 (सन् 1971 में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम लागू होने के उपरान्त) वर्षों के लम्बे सुनियोजित एवं सक्रिय प्रयास से राष्ट्रीय साक्षरता के जिस स्तर को प्राप्त किया जा सका है सरकार वर्तमान में उस पर मौन धारण क्यों करना चाहती है। क्या यह मौन देश की एक बड़ी आबादी को पुनः असाक्षरता की चपेट में लेने की ओर अग्रसरित नहीं हो जाएगा? यह दिशाभ्रम निश्चित ही समझ से परे हैं।

– बी. संजय

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की अनिवार्यता

– योगेन्द्र लाल दास

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जनसंख्या का एक विशाल भाग यहाँ गाँवों में निवास करती है। अतएव यहाँ की विकास की प्रक्रिया मूलतः ग्रामीण विकास की प्रक्रिया ही है। ग्रामीण विकास के विविध आयाम हैं। किंतु, शिक्षा खासकर प्रौढ़ शिक्षा ग्रामीण विकास की पहली शर्त है।

वस्तुतः प्रौढ़ शिक्षा का स्वरूप जो भारत वर्ष में अबतक रहा है वह कार्यात्मक साक्षरता का स्वरूप है। इसके अर्न्तगत प्रौढ़ व्यक्ति अर्थात 15 वर्ष एवं उसके उपर के महिलाओं और पुरूषों को दैनिक जीवन के लिए उपयोगी एवं न्यूनतम पढ़ने–लिखने की और गणित की दक्षता विकसित करने, अर्थात बुनियादी साक्षरता हासिल कराने के साथ–साथ उनमें आवश्यक चेतना जागृत की जाती है ताकि वे अपनी परिस्थिति, परिवेश, समस्याओं, विकास की संभावनाओं तथा विकासात्मक योजनाओं के बारे में समझ सकें और उनमें उतनी समझ, संवेदनशीलता और वैज्ञानिक तथा विश्लेषणात्मक सोच उत्पन्न हो कि वे विकास की प्रक्रिया में भाग लेकर अपनी जीवन दशा सुधार सकें।

सबकी शिक्षा का लक्ष्य भी तब तक हासिल नहीं किया जा सकता जब तक 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों के साथ–साथ सभी प्रौढ़ भी साक्षर न हों। साक्षरता दर में भी अपेक्षित वृद्धि तब तक दर्ज नहीं हो सकती जब तक कि प्रौढ़ शिक्षा का निरन्तर प्रभावी क्रियान्वयन जारी रखने की योजना न बने और उसे अबाध रूप से क्रियान्वित नहीं किया जाए। इस बात का स्वयंसिद्ध प्रमाण विगत कुछ दशकों के साक्षरता दर के आंकड़ों से भी परिलक्षित होता है। वर्ष 1961 में भारत की साक्षरता दर केवल 28.30 प्रतिशत थी, जो 1971 में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लागू होने से पहले 34.45 प्रतिशत हो गई अर्थात केवल 6.15 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज हुई किंतु सन् 1978 में राष्ट्रव्यापी प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम लागू होने के उपरान्त क्रमशः 1981, 1991, 2001 और 2011 में साक्षरता का प्रतिशत क्रमशः 45.57, 52.21, 64.84 और 73 हो गई। इस प्रकार प्रौढ़ शिक्षा के लागू होने के उपरान्त 1971 से 1981 के बीच, 1981 से 1991 के बीच, 1991 से 2001 के बीच और 2001 से 2011 के बीच साक्षरता दर में क्रमशः 9.12 प्रतिशत, 8. 64 प्रतिशत, 12.63 प्रतिशत और 8.16 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जिसमें प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का निश्चित ही महत्तवपूर्ण योगदान रहा है।

जिस परिवार, समाज, राज्य एवं देश के प्रौढ़ नागरिक साक्षर और शिक्षित हों वहाँ बच्चों की शिक्षा स्वतः सुनिश्चित हो जाती है। खासकर प्रौढ़ महिलाओं के साक्षर होने से बच्चों का साक्षर होना सहज हो जाता है। यह एक स्वयंसिद्ध और अनुभवगम्य तथ्य है।

प्रौढ़ व्यक्ति ही उत्पादक हैं और पुनरूत्पादक भी। अतएव, शिक्षा के माध्यम से उनकी मनोवृत्ति में सकारात्मक परिवर्तन लाकर न केवल उत्पादन एवं आर्थिक विकास को गति दी जाती सकती है, वरन प्रजनन, स्वास्थ्य एवं विकास के संबंध में उनके व्यवहार में अनुकूल परिवर्तन लाकर जनांकिकीय समस्या से भी त्राण पाया जा सकता है। साथ ही स्वस्थ्य मानव शक्ति के निर्माण तथा जन्मदर एवं मृत्युदर में कमी लाने के लक्ष्य को भी हासिल किया जा सकता है।

साक्षर एवं शिक्षित प्रौढ़ व्याक्ति में राजनीतिक चेतना विकसित होने से मतदताओं के प्रतिशत में आशातीत वृद्धि के साथ–साथ मतदान में उनकी भागीदारी भी बढ़ती है। खासकर, महिलाओं की प्रतिभागिता, प्रतिनिधित्व एवं निर्णयों में भागीदारी बढ़ती है जो आम चुनावों, खासकर पंचायत चुनावों से परिलक्षित हुआ है।

यदि 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा के संवैधानिक अधिकार के तहत उल्लेखित लक्ष्यों को अनिवार्य रूप से हासिल करना है तो प्रौढ़ों को साक्षर बनाना नितान्त आवश्यक है क्योंकि जागरूक अभिभावक के रूप में वे बच्चों के उन अधिकारों को हासिल कराने के लिए सतत और सक्रिय प्रयास कर सकेंगे। प्रौढ़ शिक्षा वस्तुतः जीवनपर्यन्त शिक्षा की संकल्पना पर आधारित है। अतएव, व्यापक परिप्रेक्ष्य में यह न केवल असाक्षरों को वरन् साक्षरों एवं शिक्षितों को भी विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर सर्वदा प्रदान कर सकती है जिससे उनके व्यक्तिगत अभिरूचि संवर्धन, व्यावसायिक कौशल उन्नयन और जीवन की गुणवत्ता में सुधार संभव है। अतः यह हर व्यक्ति के लिए उपयोगी एवं अपरिहार्य है।

भारत वर्ष में सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास की जो बाधाएँ एवं चुनौतियाँ विद्यमान हैं, उन्हें बहुत हद तक प्रौढ़ शिक्षा के व्यापाक लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में सचेष्ट एवं सुनियोजित पहल करने से दूर किया जा सकता है। यह एक विड़म्बना ही है कि भारत के सामाजिक एवं अकादमिक जगत में लम्बे अरसे तक यह अवधारणा बनी रही कि सभी बच्चों को शिक्षित करने से ही इस लक्ष्य की प्राप्ति संभव हो जाएगी। लेकिन आनेवाले वर्षों के अनुभवों से यह पता चला कि अनेक प्रयासों के बावजूद 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को इस निर्धारित समय सीमा में साक्षर अथवा शिक्षित करना सम्भव नहीं हो पाया है। यह भी ज्ञात हुआ कि इस उम्र के जो बच्चे असाक्षर रह जाते हैं, आगे चलकर उनकी गिनती प्रौढ़ असाक्षर के रूप में होने लगती है। अतएव, जबतक बच्चे एवं प्रौढ़ दोनों को समग्र रूप से साक्षर एवं शिक्षित करने का ठोस प्रयास नहीं होगा तब तक सर्वांगीण शिक्षा का लक्ष्य

दिवास्वप्न ही रहेगा। इस शिक्षा के केन्द्र बिन्दु में वे असाक्षर हैं जो विविध कारणों से बचपन में विद्यालय नहीं जा सके और आज भी अशिक्षा की चपेट में हैं। ये सभी लोग न तो सरकार द्वारा संचालित विकासात्मक गतिविधियों का लाभ उठा पाते हैं और ना ही स्वयं प्रयत्नशील होकर विकास हेतु कोई कार्य योजना बना पाते हैं। अतः स्वाभाविक रूप से ही ये वंचित और उपेक्षित रहते हुए आधुनिक समाजिक संरचना के सबसे निचले पायदान पर रहने को विवश हैं।

वैसे तो कई प्राचीन सभ्यताओं की जन्मस्थली एवं वाहक होने के कारण इस देश ने अपने शैक्षिक धरातल पर अनेक उतार–चढ़ाव होते देखे हैं और यहां शैक्षिक चिन्तन की दिशाएं भी भिन्न–भिन्न रही हैं। पर स्वाधीनोत्तर भारत में शिक्षा के तहत किए गए प्रयास कई मायनों में ज्यादा व्यापक, संगठित एवं प्रभावी रहे हैं।

प्रौढ़ शिक्षा का परिदृश्य

भारत वर्ष में प्रौढ़ शिक्षा की शुरूआत स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही हो चुकी थी, लेकिन तब इसकी व्यापकता अत्यंत ही सीमित थी और इसमें निरंतरता का अभाव था। पर स्वतंत्र भारत में इस दिशा में हो रहे प्रयासों की निरंतरता अब तक बनी हुई है। कभी यह 'ईच–वन, टीच–वन' के नाम से तो कभी 'सामाजिक शिक्षा', 'ग्राम शिक्षा मुहिम' और कभी कृषकों के लिए 'कार्यात्मक साक्षरता' के नाम से चलता रहा। परन्तु एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम के रूप में इसे राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के नाम से 2 अक्टूबर 1978 को सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया। यह कार्यक्रम मूलतः केन्द्र आधारित था जिसमें एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र में 30 वयस्क असाक्षरों को एक मानदेय आधारित अनुदेशक द्वारा साक्षर बनाने की योजना थी। इसके तहत 15 से 35 आयु वर्ग के असाक्षरों को एक निर्धारित समय सीमा के भीतर साक्षर बनाकर देश में निरक्षरता उनमूलन के लक्ष्य को हासिल करना था।

परन्तु राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के समीक्षा से यह ज्ञात हुआ कि इस कार्यक्रम की उपलब्धि और निर्धारित लक्ष्य के बीच एक बड़ा अन्तराल है तथा इसके क्रियान्वयन में लोक भागीदारी का अभाव रहा है। इतना ही नहीं, कतिपय प्रक्रियात्मक एवं वित्तीय जटिलताओं के कारण भी इस इस कार्यक्रम के सुचारू संचालन में अनेक अड़चनें आई जिससे इसकी उपलब्धि प्रभावित हुई। इन अड़चनों से बचने तथा कालक्रम मे बेहतर उपलब्धि हासिल करने की दृष्टि से आगामी दिनों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में कई परिवर्तनों का समावेश किया गया जिससे प्रौढ शिक्षा की दिशा में बदलाव आया।

इसी पृष्ठभूमि में सन् 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना हुई। इस नवीन कार्यक्रम की संरचना, रणनीति, गतिविधियों एवं उनके क्रियान्वयन में आमूल परिवर्तन किये

गये। प्रौढ़ शिक्षा की इस नई राष्ट्रीय पहल को एक समयबद्ध अभियान के रूप में संचालित किया गया जिसमें एक स्वयंसेवी शिक्षक द्वारा 10 असाक्षरों को बुनियादी साक्षरता प्रदान करने की व्यवस्था की गई। इस रणनीति के तहत राष्ट्रीय साक्षरता अभियान के अर्न्तगत सर्वप्रथम सम्पूर्ण साक्षरता अभियान संचालित किया गया। इसके पश्चात उत्तर साक्षरता कार्यक्रम और तत्पश्चात सतत शिक्षा कार्यक्रम संचालित कर लक्ष्य समूह को न केवल साक्षर एवं शिक्षित बनाने की कोशिश की गई बल्कि उन सभी के लिए व्यावसायिक कौशल प्रदान करने की पहल भी की गई ताकि नवसाक्षर अपने व्यक्तिगत रूचि के अनुरूप ज्ञान और कौशल अर्जित कर जीवन की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार कर सकें।

सन् 1988 से 2008 तक राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में देश के 597 जिलों में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान, 485 जिलों में उत्तर साक्षरता कार्यक्रम तथा 328 जिलों में सतत् शिक्षा कार्यक्रम लागू किया गया। उक्त समयावधि में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के आकलन के अनुसार कुल मिलाकर लगभग 13 करोड़ असाक्षर वयस्क साक्षर बनाए गए। किन्तु 20 सालों के लम्बे अन्तराल में हासिल हुई यह उपलब्धि लक्ष्य की तुलना में पर्याप्त नहीं थी। इस संदर्भ में हुए अध्ययनों एवं अलग–अलग स्तरों पर हुए समीक्षाओं से यह इंगित होता प्रतीत हुआ कि साक्षरता अभियान स्वयंसेवी प्रयासों पर आधारित अभियानजनित सीमाओं में बंधे रहने, व्यापक लोक भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पाने, लक्ष्य समूहों एवं हितभागियों में पर्याप्त उत्प्रेरणा का अभाव होने, विभिन्न स्तरों पर मजबूत प्रबंधकीय संरचना का अभाव होने तथा सहयोगात्मक अनुश्रवण एवं पर्यावेक्षण की कमी होने के कारण वांछित लक्ष्य हासिल करने में सफल नहीं हो सका।

यद्यपि, वर्ष 2001–02 में इस अभियान के तहत एक अभिनव प्रयास के द्वारा देश के 4 राज्यों, यथा बिहार, झारखण्ड, ओड़िसा एवं उत्तर प्रदेश में विशेष त्वरित महिला साक्षरता कार्यक्रम का संचालन किया गया तथा साक्षरता केन्द्रों के द्वारा कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करने के अतिरिक्त विशेष लक्ष्य समूह, खासकर असाक्षर महिला पंचायत प्रतिनिधियों के लिए अल्पावधि साक्षरता शिविरों के माध्यम से साक्षरता प्रदान करने की रणनीति अपनाई गई। सम्पूर्ण साक्षरता अभियान की तुलना में इस प्रयोग का परिणाम खासकर उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे प्रदेशों में अत्यंत बेहतर रहा। शिविर आधारित यह प्रयोग साक्षरता प्रतिभागियों को साक्षर बनाने के साथ–साथ उन्हें शिक्षा–साक्षरता के प्रति संवेदनशील बनाने में भी कारगर सिद्ध हुआ। साथ ही साथ बिहार में स्वयंसेविकाओं को स्वयं सहायता समूह विषय पर प्रशिक्षण प्रदान कर समूह गठन की दिशा में विशेष पहल की गई। इस कार्य को गति प्रदान करने के लिए केन्द्र, राज्य एवं जिला स्तर पर ग्रामीण विकास विभाग के साथ समन्वय भी स्थापित किया गया। परन्तु यह प्रयास भी कहीं न कहीं रूक सा गया और इसके राह में भी कई प्रकार की बाधाएं उत्पन्न होने लगीं। इस नवाचारी प्रयास ने यद्यपि साक्षर समाज के निर्माण में बेहतर भूमिका अदा की पर इसमें भी निरंतरता का अभाव रहा। कुल मिलाकर आगे

आनेवाले वर्षों में अभियान की गति की तीव्रता में भी क्रमशः कमी महसूस होने लगी। फलतः, पुनः इस कार्यक्रम के स्वरूप में परिवर्तन लाने की दिशा में चिन्तन प्रारम्भ हुआ।

अन्ततः 8 सितम्बर 2009 को साक्षर भारत कार्यक्रम के नाम से इसका परिवर्तित स्वरूप सामने आया। उक्त कार्यक्रम की जो प्रस्तावित प्रारूप तय की गई उसमें बुनियादी साक्षरता, बुनियादी शिक्षा, सतत् शिक्षा एवं कौशल विकास प्रशिक्षण को एक साथ लागू करने की अवधारणा बनी। इसमें 15 वर्ष और उसके उपर के सभी व्यक्तियों को लक्ष्य समूह के रूप में सामने रखा गया। इसके तहत निर्धारित 70 मिलियन लक्ष्य समूह में 60 मिलियन महिलाओं को साक्षर करने का लक्ष्य रखा गया। जातिवर्गवार विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यकों को लक्ष्य समूह में विशेष प्राथमिकता प्रदान की गई है। साक्षर भारत कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए जिलों से लेकर पंचयतों तक लोक शिक्षा समितियों का गठन किया गया। प्रत्येक पंचायत में 1 लोक शिक्षा केन्द्र, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र के रूप में स्थापित किया गया जिसमें 2 प्रेरकों की नियुक्ति की गई ताकि वे केन्द्र की विविध गतिविधियों के संचालन के साथ–साथ समुदाय आधारित शिक्षा–साक्षरता संबंधित विविध गतिविधियों का अनुश्रवण कर सकें तथा उसका लेखा–जोखा रख सकें।

साक्षर भारत के क्रियान्वयन में राज्य साक्षरता मिशन पर प्रशासनिक भूमिका के अतिरिक्त अकादमिक भूमिका के निर्वहन की भी जिम्मेवारी सौंपी गई। शिक्षण–प्रशिक्षण, सामग्री निर्माण तथा प्रशिक्षण के संचालन में उन्हें अग्रणी भूमिका दी गई। इसके विपरीत, इन अकादमिक कार्यों में राज्य संसाधन केन्द्रों की जो भूमिका थी उसमें कमी आई क्योंकि पूर्व की तरह इसकी अपरिहार्यता एंव प्राथमिकता नहीं रही।

साक्षर भारत कार्यक्रम के तहत कुल मिलाकर अब तक देश के 25 राज्यों एवं 1 केन्द्र शासित प्रदेश से चयनित 372 जिलों को सम्मिलित किया गया। प्रत्येक राज्य साक्षरता मिशन एवं राज्य संसाधन केन्द्र को यह जिम्मेवारी दी गई कि वे इनमें से कुछ लोक शिक्षा केन्द्रों को उत्कृष्ट/मॉडल लोक शिक्षा केन्द्र के रूप में विकासित करें। साक्षर भारत कार्यक्रम के तहत वर्ष 2013 तक लगभग 1.5 लाख लोक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी थी। लगभग 16 लाख स्वयंसेवकों और प्रेरकों के माध्यम से 2 करोड़ के करीब असाक्षरों को साक्षर बनाने का प्रयास किया गया।

उपर्युक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि निर्धारित समय–सीमा में साक्षर भारत कार्यक्रम का लक्ष्य भी हासिल नहीं हो सका। इस विफलता के पीछे कई कारण हैं। साक्षर भारत कार्यक्रम की पूर्व तैयारी में लगभग 2 से 3 वर्षों का समय लग गया। कार्यक्रम के प्रारम्भ होने के बाद भी इसके स्वरूप के अनुरूप बहुआयामी क्रियाकलापों को धरातल पर नहीं उतारा जा सका क्योंकि इसके क्रियान्वयन के मार्ग में भी कतिपय प्रक्रियात्मक, वित्तीय एवं अन्य

बाधाएं सामने आईं। फलतः साक्षर भारत कार्यक्रम को गति देने के लिए नवाचारों की जरूरत महसूस हुई। इसी परिप्रेक्ष्य में हाल के वर्षों में इन्टर पर्सनल मीडिया कैम्पेन संचालित किया गया। इसके तहत देश के 1 लाख ग्राम पंचायतों को पूर्ण साक्षर बनाने का लक्ष्य रखा गया। कार्यक्रम को पुनर्जीवित और गतिशील बनाने के लिए साक्षरता संबंधित शिक्षण–प्रशिक्षण विषय–वस्तुओं में तथा वातावरण निर्माण की गतिविधियों में कतिपय समसामयिक विषयों, यथा–चुनावी साक्षरता, कानूनी साक्षरता, वित्तीय साक्षरता तथा आपदा प्रबंधन एवं नागरिक सुरक्षा का समावेश करने की रणनीति बनाई गई और तदनुरूप प्रयास भी किए गए। इन प्रयासों को मजबूती प्रदान करने के लिए संबंधित विभागों, यथा– चुनाव आयोग, अपदा प्रबंधन, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया आदि के साथ समन्वय (कनवर्जेन्स) स्थापित किया गया।

वर्ष 2014 में संसदीय चुनाव के उपरान्त आदर्श सांसद ग्राम योजना के तहत चयनित गांवों को साक्षर बनाने के प्रति भी साक्षर भारत कार्यक्रम के तहत सचेष्टता दिखायी गयी तथा इस हेतु उपयुक्त पहल भी की गई। इसके अतिरिक्त नेशनल मिशन फॉर ग्रीन गंगा के तहत स्वच्छ गंगा पर्यावरणीय साक्षरता के संदर्भ में भी कई कार्यक्रमों की योजनाएं बनी। इस प्रकार समय–समय पर कार्यक्रम के स्वरूप में और क्रियान्वयन में परिवर्तन होता रहा है। संबंधित राज्य संसाधन केन्द्रों ने भी अपने–अपने कार्यक्षेत्रों में इन योजनाओं को गति प्रदान करने हेतु सम्यक अकादमिक पहल की है। शिक्षण–प्रशिक्षण एवं उत्प्रेरण के सामग्री निर्माण, वातावरण निर्माण, प्रशिक्षण, उन्मुखीकरण तथा साक्षरता की गतिविधियां संचालित करने में राज्य संसाधन केन्द्रों को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई है।

निष्कर्ष एवं अनुशंसाएं

उपरोक्त तथ्य यह इंगित करते हैं कि प्रौढ़ शिक्षा की दिशाएं विविधतापूर्ण रही हैं। समय–समय पर कार्यक्रम में नये आयाम जुड़ते रहे हैं। क्रियान्वयन की रणनीति में भी परिवर्तन होता रहा है, परन्तु सच यह है कि नीतिगत स्वरूप के अनुरूप कार्यान्वयन सुनिश्चित नहीं हो सका है। परिणामस्वरूप प्रौढ़ शिक्षा के लक्ष्य और उपलब्धि के बीच हमेशा अन्तराल कायम रहा है। अर्थात दिशाएं बदलती रही हैं, किन्तु दशा में व्यापक बदलाव लाना शेष है। उत्तरोत्तर, प्रौढ़ शिक्षा के परिवर्तित कार्यक्रमों को लागू करते समय पर्वूवर्ती कार्यक्रमों की खूबियों को ग्रहण करने और कमियों को दूर करने की प्रभावी रणनीति पर सम्यक विचार का सम्भवतः थोड़ा अभाव रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि जबतक एक भी असाक्षर देश में है, सर्वोच्च प्राथमिकता निरक्षरता उन्मूलन कार्यक्रम को ही दी जाए, अर्थात् प्रौढ़ शिक्षा की अनिवार्यता महसूस की जाए।

प्रौढ़ शिक्षा एवं साक्षरता के केवल महत्वकांक्षी योजना बनाने के बजाय, व्यावहारिक योजनाएं बनायी जाएं जो विशिष्ट हों, मापनीय हों, हासिल करने योग्य हों, वास्तविक हों और

समयबद्ध हों। साथ ही इसके लिए पर्याप्त मानव संसाधन एवं वित्तीय संसाधन की उपलब्धता भी सुनिश्चित हो। लक्ष्य निर्धारण एवं क्रियान्वयन की रणनीति पूर्णतः विकेंद्रित एवं सूक्ष्म स्तरीय योजना पर आधरित हो।

शिविर आधारित साक्षरता का अनुभव चूंकि अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी साबित हुआ है, अतएव इस प्रयोग को प्रश्रय देने की जरूरत है। साथ ही अनुदेशक आधारित केन्द्र के माध्यम से साक्षरता के प्रयासों को गति देने पर भी बल देने की जरूरत है।

साक्षर भारत कार्यक्रम के प्रभाव आकलन हेतु समवर्ती मूल्यांकन, बाह्य मूल्यांकन एवं प्रभाव अध्ययन भी करना अपेक्षित है।

प्रौढ़ शिक्षा को तदर्थ, अस्थायी एवं अल्पकालीन योजना के रूप में संचालित करने के बजाय, स्थायी कार्यक्रम का स्वरूप दिया जाए। इसके लिए नये सिरे से स्थानीय सर्वेक्षण के आधार पर आवश्यकता का आकलन करना होगा, पर्याप्त पूर्व तैयारी करनी होगी, सुस्पष्ट रणनीति बनानी होगी और तदनुरूप गतिविधियां संचालित करनी होगी।

केन्द्र से लेकर राज्य एवं जिलों के त्रिस्तरीय प्रबंधकीय संरचना को मजबूत करना होगा। अकादमिक सहयोग प्रदान करने वाली संस्था, यथा राज्य संसाधन केन्द्र को परिवर्तित परिवेश, परिस्थिति एवं नई चुनौतियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप सशक्त बनाना होगा। इसके लिए इस बात पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है कि पूर्व अनुभवी योग्य एवं समर्पित कर्मियों को अकादमिक क्रियाकलापों से जोड़ा जाए तथा उनकी सहभागिता के माध्यम से कार्यक्रमों की गुणवत्ता बरकरार रखी जाए। जिला स्तर पर भी पूर्व अनुभवी, योग्य एवं कर्मठ साक्षरता कर्मियों को कार्यक्रम से जोड़े रखने की कोशिश करनी होगी।

वर्तमान परिवेश में सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि नीतिगत रूप से प्रौढ़ शिक्षा की अनिवार्यता महसूस की जानी चाहिए। अकादमिक, वित्तीय, प्रशासकीय एवं प्रबंधकीय संरचना को यथावत बनाये रखकर जिला स्तर पर जिला लोक शिक्षा समिति में अनुश्रवण एवं मार्गदर्शन (मेंटरिंग) के लिए जिला पदाधिकारी और जाने–माने शिक्षाविदों को भी शामिल किया जाए।

साथ ही प्रौढ़ शिक्षा का जो स्वरूप साक्षर भारत में तय किया गया था उसमें निरक्षरता उन्मूलन कार्यक्रम की सर्वोच्च प्राथमिकता देने के साथ–साथ अन्य कार्यक्रम जो सही मायने में अबतक धरातल पर उतारे नहीं जा सके, उन्हें समयबद्ध एवं सुनियोजित ढ़ंग से लागू किया जाए। उसके लिए पर्याप्त वित्तीय प्रावधान किया जाए ताकि कार्यक्रम के निर्धारित प्रारूप (कार्य योजना) और क्रियान्वयन में पूर्व की तरह विशाल अंतर न रह जाए।

राज्य संसाधन केन्द्रों को पठन–पाठन सामग्री निर्माण, प्रशिक्षण, शोध एवं मूल्यांकन, परियोजना एवं कार्ययोजना निर्माण, आदि आकादमिक क्रियाकलापों में पूर्व की तरह अग्रणी भूमिका निभाने हेतु आवश्यकतानुसार उनका क्षमता वर्धन भी किया जाए।

सभी स्तर की समीतियों एवं संगठनों तथा अकादमिक गतिविधियों से जुड़े कर्मियों का सतत उत्साहवर्धन, उन्मुखीकरण एवं क्षमता वर्धन प्रशिक्षण भी सुनिश्चित किया जाना अपेक्षित है। प्रबोधन, उत्साहवर्धन सह–कार्यक्रम के सतत स्तरीय अनुगमन हेतु राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा इन्टर स्टेट टीम गठित की जाये और उसके अनुशंसाओं को संवेदनशीलता के साथ स्वीकार कर आवश्यक एवं यथोचित पहल की जाये ताकि बांछित परिणाम हासिल हो सके।

अंततः यह कहना समीचीन होगा कि भारत सरकार द्वारा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की अनिवार्यता (उपादेयता) को स्वीकार की जाए तथा उपर्युक्त तथ्यों एवं सुझावों को ध्यान में रखकर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की नीतिगत स्वरूप एवं क्रियान्वयन की दिशा तय की जाए ताकि प्रौढ़ शिक्षा का वांछित परिणाम हासिल किया जा सके और समग्र शिक्षा तथा समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके। इससे अपेक्षित लक्ष्य को हासिल करना सम्भव हो सकेगा।

नम्रता का अर्थ है अहंकार का नाश। स्वाभाविक नम्रता कभी भी छिपी नहीं रहती। ऋषि वशिष्ठ और विश्वामित्र का उदाहरण तो हम लोगों ने कई बार सुना है। हमारी नम्रता भी ऋषि वशिष्ठ की तरह होनी चाहिए। हम कुछ हैं–जहां यह भूल मन पर सवार हुई कि नम्रता हवा हो गई। क्योंकि मनुष्य है कुछ नहीं। वह एक बूंद के समान है जो समुद्र में रहती है, समुद्र का सुख भोगती है। समुद्र से बाहर आकर यदि वह रहना चाहे तो सूख जाती है! इसी तरह मनुष्य जब तक मन से नम्र है तब तक तो वह सब कुछ है। अहंकारी होने पर वह एक तिनके के समान भी नहीं।

– महात्मा गांधी

कौशल विकास और युवा शक्ति

– कल्पना कौशिक

आजादी के बाद देश की अधिकांश सरकारें जनसंख्या विस्फोट को बड़ी समस्या के रूप में लेती रही हैं। उन्होंने मानव बल को एक बोझ माना और राष्ट्रीय विकास की धारा के साथ इसे समायोजित करने का प्रयास नहीं किया। उनके अंदर यह सोच ही नहीं थी। जहां तक जनसंख्या का सवाल है, चीन की जनसंख्या भारत से कहीं ज्यादा है। लेकिन उसके यहां न तो जनसंख्या विस्फोट का रोना रोया गया और न ही इसे बोझ माना गया। वहां बेरोजगारी जैसी कोई समस्या नहीं है। कुटीर उद्योगों के जरिए ग्रासरूट तक उद्यमिता का विकास किया गया और स्वरोजगार को बढ़ावा दिया गया। नतीजतन वहां सभी अपनी पसंद के काम में लग जाते हैं और आज विश्व बाजार चीनी उत्पाद से पट सा गया है। फर्क बुनियादी सोच का है। चीन मानव बल को राष्ट्रीय संपति मानता है जबकि हमारे यहां इसे बोझ माना जाता रहा है। सामान्यतः संपति को संजोकर रखा जाता है और बोझ से छुटकारा पाने का रास्ता ढूंढ़ा जाता है। यही कारण है कि हमारे यहां मानव बल के सदुपयोग का रास्ता तलाशने की जगह परिवार नियोजन पर ज्यादा जोर दिया जाता रहा। यह देश का सौभाग्य है कि आजादी के छह दशकों बाद सही एक ऐसी सरकार आई है जो मानव बल को राष्ट्र की निधि मान रही है और कौशल विकास के जरिए हर हाथ को काम देने की दिशा में अभियान चला रही है। कौशल विकास के जरिए उद्यमिता को बढ़ावा देने के साथ ही स्वरोजगार की दिशा में आनेवाली कठिनाईयों को भी दूर करने का उपाय कर रही है। वर्तमान सरकार का यह प्रयास कितना सफल होता है यह तो आने वाला समय बताएगा । किसी भी देश के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए कौशल और ज्ञान दो प्रेरक बल होते हैं। वर्तमान वैश्वीकरण के इस दौर में उभरती अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य चुनौती से निपटने में वही देश आगे निकल पा रहे हैं जिन्होंने कौशल का उच्च स्तर प्राप्त कर लिया है।

आज एक अच्छी बात यह है कि हमारे देश की आबादी में युवा शक्ति की बड़ी भागीदारी है। भारतीयों के पास उद्यमिता का गुण जन्मजात होता है। सेल्समेनशिप का कोई प्रशिक्षण न होने के बाद भी हाट–बाजार में अनपढ़ फेरीवाले भी जिस तरह ग्राहकों को अपने उत्पाद की ओर खींच लेते हैं वह इसे प्रमाणित करता है। यदि उसके कौशल को एक दिशा दी जाए तो वह और निखर कर सामने आएगा। वर्तमान सरकार ने इस बात को समझा है और महसूस किया है कि किसी भी देश में कौशल विकास कार्यक्रम के लिए मुख्य रूप से युवाओं पर ही जोर दिया जाना चाहिए और राष्ट्रीय हित में इस शक्ति को अग्रिम कतार में रखना चाहिए। भारत के साथ सकारात्मक बात यह है कि यहां की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा उत्पादक आयु वर्ग में आता हैं। यह हमारे देश को सुनहरा अवसर भी प्रदान करता है और

साथ ही एक बड़ी चुनौती भी पेश करता है। सरकार जानती है कि हमारी अर्थव्यवस्था को इसका लाभ तभी मिलेगा जब युवा वर्ग स्वस्थ, शिक्षित और कुशल होगा।

भारत के पास एक अतुलनीय युवा जनसंख्या है जिससे आने वाले समय में सामाजिक आर्थिक विकास को जोरदार बढ़ावा मिल सकता है। हमारे देश में अभी करीब 60.5 करोड़ लोग 25 वर्ष से कम आयु के हैं। रोजगार के लिए उपयुक्त कौशल प्राप्त करके आबादी का यह युवा हिस्सा परिवर्तन का प्रतिनिधि हो सकता है। प्रशिक्षित होने के बाद यह न केवल अपने जीवन को प्रभावित करने के काबिल होगा बल्कि दूसरों के जीवन में भी बदलाव लाने की स्थिति में होगा।

हाल में ही मंजूर की गई प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) युवाओं के कौशल प्रशिक्षण की ही दिशा में लक्षित एक प्रमुख योजना है। इसके तहत पाठ्यक्रमों में सुधार, बेहतर शिक्षण और प्रशिक्षित शिक्षकों पर विशेष जोर दिया गया है। प्रशिक्षण में अन्य पहलुओं के साथ व्यवहार कुशलता और व्यवहार में परिवर्तन भी शामिल है।

नवगठित कौशल विकास और उद्यम मंत्रालय राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) के माध्यम से इस कार्यक्रम को क्रियान्वित कर रहा है। इसके तहत 24 लाख युवाओं को प्रशिक्षण के दायरे में लाया जाना है। कौशल प्रशिक्षण नेशनल स्किल क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क (एनएसक्यूएफ) और उद्योग द्वारा तय मानदंडों पर आधारित है। कार्यक्रम के तहत तृतीय पक्ष आकलन संस्थाओं द्वारा मूल्यांकन और प्रमाण पत्र के आधार पर प्रशिक्षुओं को नकद पारितोषिक भी दिए जाने का प्रावधान हैं। नकद पारितोषिक औसतन 8,000 रूपए प्रति प्रशिक्षु तय किया गया है।

कौशल प्रशिक्षण एनएसडीसी द्वारा हाल ही में संचालित कौशल अंतर अध्ययनों के जरिए मांग के आकलन के आधार पर दिया जा रहा है। केन्द्र और राज्य सरकारों, उद्योग और व्यावसायिक घरानों से विचार विमर्श कर सरकार भविष्य की मांग का आकलन कर रही है। इसके लिए एक मांग समूहक मंच भी शुरू किया जा रहा है।

कौशल विकास के लक्ष्य निर्धारित करते समय हाल में ही लागू किये गये प्रमुख कार्यक्रम जैसे कि 'मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया, राष्ट्रीय सौर ऊर्जा मिशन और स्वच्छ भारत अभियान के मांगों को भी ध्यान में रखा जा रहा है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत मुख्य रूप से श्रम बाजार में पहली बार प्रवेश कर रहे लोगों पर जोर दिया जा रहा है और विशेषकर कक्षा 10 व 12 के दौरान स्कूल छोड़ गये छात्रों पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। योजना का क्रियान्वयन एनएसडीसी के प्रशिक्षण साझेदारी द्वारा किया जाना है।

फिलहाल लगभग 2,300 केंद्रों के एनएसडीसी के 187 प्रशिक्षण साझेदार हैं। इनके अलावा केंद्र व राज्य सरकारों से संबंधित प्रशिक्षण प्रदाता संस्थाओं को भी इस योजना के तहत प्रशिक्षण के लिए जोड़ा जा रहा है। सभी प्रशिक्षण प्रदाताओं को इस योजना के लिए योग्य होने के लिए एक जांच प्रक्रिया से गुजरना होगा। पीएमकेवीवाई के तहत सेक्टर कौशल परिषद् व राज्य सरकारें भी कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों की निगरानी करेंगी।

इस योजना के तहत एक कौशल विकास प्रणाली (एसडीएमएस) भी तैयार की जा रही है जो सभी प्रशिक्षण केंद्रों के विवरणों और प्रशिक्षण व पाठ्यक्रम की गुणवत्ता की जांच करेगी और उन्हें दर्ज भी करेगी। जहां तक संभव होगा प्रशिक्षण प्रक्रिया में बायोमिट्रिक सिस्टम व वीडियो रिकार्डिग भी शामिल की जा रही है। इस संबंध में पीएकेवीआई से जानकारी ली जा रही है, जो पीएमकेवीआई की प्रभावशीलता का मूल्यांकन का मुख्य आधार होगीं। शिकायतों के निपटान के लिए एक प्रभावी शिकायत निवारण तंत्र भी शुरू किया जा रहा है। इसके अलावा कार्यक्रम के प्रचार–प्रसार के लिए एक आनॅलाइन नागरिक पोर्टल भी शुरू किया जा रहा है।

इस योजना के तहत कुल 1120 करोड़ रूपए के परिव्यय से 14 लाख युवाओं को प्रशिक्षित किया जाएगा और इसमें पूर्व शिक्षा–प्रशिक्षण को चिन्हित करने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। इस मद में 220 करोड़ रूपए का प्रावधान किया गया है। युवाओं को जुटाने तथा उनके बीच जागरूकता अभियान चलाने के लिए 67 करोड़ रूपए का प्रावधान किया गया है। युवाओं को कौशल मेलों के जरिए जुटाया जाएगा और इसके लिए स्थानीय स्तर पर राज्य सरकारों, स्थानीय निकायों, पंचायती राज संस्थाओं और समुदाय आधारित संस्थाओं का सहयोग लिया जाएगा।

कौशल व उद्यम विकास वर्तमान सरकार की उच्च प्राथमिकताओं में शामिल हैं । नवगाठित कौशल व उद्यम विकास मंत्रालय की ''मेक इन इंडिया'' की इस अभियान के लक्ष्यों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका होनी है। यह अभियान भारत को एक विनिर्माण केन्द्र के रूप में परिवर्तित करने की दिशा में एक बड़ी पहल है। विकासशील अर्थव्यवस्था के विनिर्माण क्षेत्र समेत सभी क्षेत्रों की मांग के अनुसार प्रशिक्षित कार्यबल तैयार करने में इस मंत्रालय की अहम भूमिका होनी है।

इस दिशा में उठाये गए सभी उपायों को शामिल करने के लिए एक नयी राष्ट्रीय कौशल व उद्यम विकास नीति भी तैयार की गयी है। इस नीति के जरिए उच्च गुणवत्ता वाले कार्यबल के साथ विकास को बढ़ावा देने की रूपरेखा तैयार की जा रही है। वर्ष 2022 तक 50 करोड़ लोगों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा गया है।

इस दिशा में प्रयास मिशन के तौर पर किया जा रहा है। राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन के तहत तीन संस्थान कार्य कर रहे हैं। राष्ट्रीय कौशल विकास परिषद् प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कौशल विकास प्रयासों को नीतिगत दिशा दे रही है और इनकी समीक्षा भी कर रही है। नीति आयोग के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में राष्ट्रीय कौशल विकास समन्वय प्रधानमंत्री की परिषद् के नियमों को लागू करने के लिए रणनीतियों पर कार्य कर रहा है। एनएसडीसी एक गैर–लाभ कंपनी है और गैर संगठित क्षेत्र समेत श्रम बाजार के लिए कौशल प्रशिक्षण की जरूरतों को पूरा कर रही है।

भारत ने विश्व में सबसे तेजी से विकास कर रही अर्थव्यवस्था के रूप में अपनी पहचान बना ली है। उम्मीद है कि भारत शीघ्र ही विश्व की तीन सबसे बड़े अर्थव्यवस्था में शामिल हो जाएगा। वर्ष 2020 तक भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा विनिर्माण केन्द्र भी बन जाएगा। जनसंख्या के सकारात्मक कारकों और उच्च गुणवत्ता वाले कार्यबल की सतत् उपलब्धता की मदद से हमारा देश विश्व अर्थव्यवस्था में विशेष छाप छोड़ सकता है।

भविष्य के बाजारों के लिए कौशल विकास से लेकर मानव संसाधन विकसित करने के लिए हाल में ही घोषित प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से अवश्य ही हमारी अर्थव्यवस्था को पूर्ण लाभ मिलेगा। नई नीति के तहत मिशन के तौर पर लागू की गई यह योजना मानव संसाधन और उद्योग के विकास में एक नए युग की शुरूआत करेगी।

प्रधानमंत्री भारत के नवनिर्माण के प्रति जिस तरह समर्पित हैं, उन्हें कुटीर उद्योगों के विकास पर विशेष जोर देना चाहिए। फिलहाल वे खादी के ब्रांड अंबेसडर की भूमिका में है। उनके प्रयासों से खादी की बिक्री में भारी इजाफा हुआ है और विश्व बाजार में भी इसकी मांग बढ़ी है। उसके उत्पाद की गुणवत्ता में भी सुधार आया है। खादी ग्रामोद्योग आजादी के बाद से ही अपने ढ़ंग से कौशल और उद्यमिता के विकास के लिए काम करता रहा है। उसके पास ऐसी बहुत सी योजनाएं हैं जिन्हें थोड़े प्रशिक्षण के बाद कम पूंजी से शुरू किया जा सकता है। लोग इससे जुड़ते और इसके जरिए आर्थिक स्वावलंबन की ओर भी बढ़ते रहे हैं। लेकिन सरकार की उपेक्षात्मक नीति के कारण इसे लगातार घाटा उठाना पड़ा और आर्थिक संकट के कारण उसका मिशन वह गति नहीं पकड़ पाया जिसकी अपेक्षा थी। इसे महात्मा गांधी के धरोहर के रूप में देखा जाता रहा। बावजूद इसके लाखों परिवार इससे जुड़कर अपने भरण–पोषण का इंतजाम कर ले रहे हैं। इसके पास प्रशिक्षण की भी व्यवस्था है और उत्पाद की बिक्री का तंत्र भी है। छोटे उद्यमियों को इससे जुड़ने के बाद सिर्फ उत्पादन पर ध्यान देने की जरूरत पड़ती है। माल खपाने के लिए बाजार की प्रतियोगिता की चिंता नहीं करनी होती। यह काम खादी ग्रामोद्योग करता है। अगर खादी ग्रामोद्योग को कौशल विकास योजना से जोड़ा जाए तो इसके बेहतर परिणाम सामने आ सकते हैं। इसके जरिए देश के हर परिवार को अतिरिक्त आय का जरिया मुहैया कराया जा सकता है जिसका लाभ सभी

आय वर्ग के लोग उठा सकते हैं। सरकार ने प्रशिक्षण के बाद बैंकों से आसान शर्तों पर ऋण की व्यवस्था की है। सरकार को चाहिए कि खादी ग्रामोद्योग को कौशल विकास योजना के साथ जोड़े और खासतौर पर शहरी और ग्रामीण निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों को इससे जोड़े। इससे वे अपना मूल काम करते हुए खाली समय में अतिरिक्त आय कर सकेंगे और देश खुशहाली की ओर बढ़ेगा। इस बात को याद रखा जाना चाहिए कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व ग्रामीण भारत की अर्थ व्यवस्था कृषि के साथ कुटीर उद्योग और पशुपालन पर निर्भर करती थी। अंग्रेजों ने इस पूरी व्यवस्था को छिन्न–छिन्न कर दिया था। उस समय हम तकनीकि रूप से ज्यादा विकसित नहीं थे। आज जबकि हम तकनीक के मामले में विश्व के किसी भी देश से होड़ लगाने की स्थिति में हैं तो हमें अर्थ–व्यवस्था के बुनियादी तत्वों को पुनर्जीवित करने का प्रयास करना चाहिए।

सरकार स्कूलों के पाठ्यक्रम में कौशल विकास को शामिल करने पर विचार कर रही है। शिक्षा को सस्ता और सुलभ बनाने का भी प्रयास किया जा रहा है। लड़कियों को एक स्तर तक मुफ्त शिक्षा दी जा रही है। बेहतर तो यह होगा कि अंग्रेजों की लिपिक उत्पादक शिक्षा प्रणाली से जल्द से जल्द छुटकारा पाया जाए और शिक्षा को रोजगार मूलक बनाया जाए। मुफ्त शिक्षा की सुविधा देने की जगह बचपन से ही इस तरह कौशल विकास किया जाए ताकि छात्र अपनी शिक्षा का खर्च अपने उद्यम और कौशल से निकाल सकें। इसके लिए न अपने अभिभावकों पर निर्भर रहें और न ही सरकारी अनुदान पर। तभी देश में एक शत–प्रतिशत शिक्षित और आत्मनिर्भर पीढ़ी सामने आएगी और एक मजबूत भारत का निर्माण होगा जो कि एक साहसी और प्रयोगधर्मी प्रधानमंत्री के कार्यकाल में ही संभव है।

आजाद आदमी के अन्दर कुछ सोचने, फैसला करने और अपने फैसले पर अमल करने की दिलेरी होती है। गुलाम आदमी यह दिलेरी खो चुका होता है। वह हमेशा दूसरे के विचारों को अपनाता है, घिसे पिटे रास्तों पर चलता है।

– अभिनेता बलराज साहनी, (सन् 1972) जेएनयू में दीक्षांत भाषण के दौरान

किसी व्यक्ति को कामयाब होना है तो उसे अच्छे मित्रों की जरुरत होती है और ज्यादा कामयाब होना है तो उसे अच्छे शत्रुओं की जरुरत होती है।

– चाणक्य

डॉ. अम्बेड़कर द्वारा वर्ग सशक्तीकरण एवं शैक्षिक जागरूकता

– वीरेन्द्र जैन

डॉ. भीमराव अम्बेडकर बहुत बड़े युगदृष्टा थे। उन्हें अछूतों व दलितों की अथाह पीड़ा का ज्ञान था और उससे मुक्ति की राह उन्हें स्पष्टरूप से दीखती थी। इसीलिए, उन्होंने आजीवन गरीबों, मजदूरों, अछूतों, दलितों, पिछड़ों, वंचितों और समाज के शोषित वर्गों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आदि हर क्षेत्र में बराबर का स्थान दिलाने के लिए अनूठे संघर्ष किए और स्वयं अनन्त कष्ट झेलते रहे। उन्होंने समाज–सेवक, शिक्षक, कानूनविद्, पदाधिकारी, पत्रकार, राजनेता, संविधान निर्माता, विचारक, दार्शनिक, वक्ता आदि अनेक रूपों में देश व समाज की अत्यन्त उत्कृष्ट व अनुकरणीय सेवा की व अपनी अनूठी छाप छोड़ी। देश व समाज के लिए उनके आजीवन और समग्र योगदान को नमन करते हुए भारत सरकार ने वर्ष 1990 में डॉ. अम्बेडकर को देश के सर्वोच्च सम्मान 'भारत–रत्न' से अलंकृत किया। युगदृष्टा व दलितों और पिछड़ों के इस मसीहा ने देश में नासूर बन चुकी छूत–अछूत, जाति–पाति, ऊँच–नीच आदि कुरीतियों के उन्मुलन के लिए अंतिम सांस तक अनूठा और अनुकरणीय संघर्ष किया। डॉ. अम्बेडकर की यह कोशिश थी कि देश भर के वंचित समाज में स्वयं की दयनीय स्थिति और उसके कारणों से मुक्ति प्राप्त करने की जागरुकता उत्पन्न हो सके ताकि वे अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने की दिशा में अग्रसरित हो सकें। 6 दिसम्बर, 1956 को महापरिनिर्वाण तक अपने इस महान उद्देश्य के लिए वे लगातार संघर्षरत रहे।

दलित वर्ग को समाज में आदर प्राप्त हो सके, इसके लिए 24 सितम्बर 1932 को डॉ. अम्बेडकर और गांधीजी के बीच एक समझौता हुआ, जो प्रसिद्ध 'पूना संधि'[1] के नाम से जाना जाता है। इस संधि के अनुसार अलग निर्वाचिका की मांग को क्षेत्रीय विधानसभाओं और राज्यों की केंद्रीय परिषद में आरक्षित सीटों जैसी विशेष रियायतों के साथ बदल दिया गया।

डॉ. अम्बेडकर ने लंदन में हुए तीनों राउंड टेबल कांफ्रेंस में भाग लिया और अछूतों के कल्याण के लिए जोरदार तरीके से अपनी बात रखी। इस बीच, ब्रिटिश सरकार ने सन् 1937 में प्रांतीय चुनाव कराने का फैसला किया। डॉ अम्बेडकर ने बंबई प्रांत में चुनाव लड़ने के लिए अगस्त 1936 में "स्वतंत्र लेबर पार्टी 'की स्थापना की। वह और उनकी पार्टी के कई उम्मीदवार बंबई विधान सभा के लिए चुने गए।

1937 में डॉ. अम्बेडकर ने कोंकण क्षेत्र में पट्टेदारी की "खोटी" प्रणाली को समाप्त करने के लिए एक विधेयक पास करवाया। इसके द्वारा भूपतियों की दासता और सरकार के गुलाम बनकर काम करने वाले महार की "वतन" प्रणाली को समाप्त किया गया।

अम्बेडकर जी अछूतों को विशेष अभिधान के खिलाफ थे – क्योंकि विशेष तमगा सामान्य नहीं रहने देता है। जब कृषि प्रधान बिल के एक खंड में दलित वर्गों को "हरिजन" के नाम से उल्लेखित किया गया तो भीमराव ने अछूतों के लिए इस शीर्षक का जोरदार विरोध किया। उन्होंने कहा की यदि "अछूत" भगवान के लोग थे, तो सभी दूसरे राक्षसों के लोग रहे होंगे। वह ऐसे किसी भी सन्दर्भ के खिलाफ थे। पर इंडियन राष्ट्रीय कांग्रेस हरिजन नाम रखने में सफल रही। अम्बेडकर को इसका बहुत दुःख हुआ कि जिसके लिए उन्हें बुलाया गया उस बात को उन्हें कहने ही नहीं दिया गया।

सन् 1947 में जब भारत आजाद हुआ तब प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने डॉ. भीमराव अंबेडकर को कानून मंत्री के रूप में संसद से जुड़ने के लिए आमंत्रित किया। संविधान सभा की एक समिति को संविधान की रचना का काम सौंपा गया और डॉ. अम्बेडकर को इस समिति का अध्यक्ष चुना गया। फरवरी 1948 को डॉ. अम्बेडकर ने भारत के लोगों के समक्ष संविधान का प्रारूप प्रस्तुत किया जिसे 26 जनवरी 1949 को लागू किया गया।

अक्टूबर 1948 में डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कानून को सुव्यवस्थित करने की एक कोशिश में हिन्दू कोड बिल संविधान सभा में प्रस्तुत किया। बिल को लेकर कांग्रेस पार्टी में भी काफी मतभेद थे। बिल पर विचार के लिए इसे सितम्बर 1951 तक स्थगित कर दिया गया। बिल को पास करने के समय इसे छोटा कर दिया गया। डॉ. अम्बेडकर ने उदास होकर कानून मंत्री के पद से त्याग पत्र दे दिया।

उन्होंने 'मूक नायक' पत्रिका भी प्रकाशित करनी शुरू की। उनके प्रयासों ने रंग लाना शुरू किया और वर्ष 1927 में उनके नेतृत्व में दस हजार से अधिक लोगों ने एक विशाल जुलूस निकाला और ऊँची जाति के लिए आरक्षित 'चोबेदार तालाब' के पीने के पानी के लिए सत्याग्रह किया और सफलता हासिल की। इसी वर्ष उन्होंने 'बहिष्कृत भारत' नामक एक पाक्षिक मराठी पत्रिका का प्रकाशन करके अछूतों में स्वाभिमान और जागरूकता का अद्भूत संचार किया। देखते ही देखते वे दलितों व अछूतों के बड़े पैरवीकार के रूप में देखे जाने लगे। इसी के परिणास्वरूप डॉ. अम्बेड़कर को वर्ष 1927 में मुंबई विधान परिषद का सदस्य मनोनीत किया गया। इसी तरह उन्हें पुनः 1932 में भी परिषद का मनोनीत सदस्य चुना गया।

विधान परिषद में उन्होंने दलित समाज की वास्तविक स्थिति को न केवल उजागर किया, बल्कि शोषित समाज की आवाज को बखूबी बुलन्द किया। वर्ष 1929 में उन्होंने 'समता समाज संघ' की स्थापना की। अगले वर्ष 1930 में उन्होंने नासिक के कालाराम मंन्दिर में अछूतों के प्रवेश की पाबन्दी को हटाने के लिए जबरदस्त सत्याग्रह किया। इसके साथ ही दिसम्बर, 1930 में 'जनता' नाम से तीसरा पत्र निकालना शुरू किया।

वर्ष 1931 में उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विरोध के बावजूद दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस में दलितों के लिए अलग निर्वाचन का अधिकार प्राप्त करके देशभर में हलचल मचा दी। गांधी जी के अनशन के बाद डॉ. अम्बेडकर व कांग्रेस के बीच 24 सितम्बर, 1932 को 'पूना पैक्ट' के नाम एक समझौता हुआ और डॉ. अम्बेडकर को भारी मन से कई तरह के दबावों के चलते दलितों के लिए अलग निर्वाचन की माँग वापस लेना पड़ा, लेकिन, इसके जवाब में उन्होंने वर्ष 1936 में 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' की स्थापना करके अपने घोषणा पत्र में अछूतों के उत्थान का स्पष्ट एजेण्डा घोषित कर दिया। अब शोषित समाज डॉ. अम्बेडकर को अपने मसीहा के रूप में देखने लग गया था। इसी के परिणास्वरूप वर्ष 1937 के आम चुनावों में डॉ. अम्बेड़कर को भारी बहुमत से अभूतपूर्व विजय हासिल हुई और कुल 17 सुरक्षित सीटों में से 15 सीटें नवनिर्मित 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' के खाते में दर्ज हुईं। वे 12 वर्ष तक बम्बई में विधायक रहे। इसी दौरान वे बम्बई कौंसिल से 'साईमन कमीशन' के सदस्य चुने गए।

लंदन में हुई तीन गोलमेज कांफ्रेंसों में भारत के दलितों का शानदार प्रतिनिधित्व करते हुए, डॉ. अम्बेडकर ने दलित समाज को कई बड़ी उपलब्धियां दिलवाईं। दलितों के मसीहा डॉ. अम्बेडकर का भारतीय राजनीति में कद बहुत ऊँचाई पर जा पहुंचा। वर्ष 1942 में उन्हें गवर्नर जनरल की काऊंसिल का सदस्य चुन लिया गया। उन्होंने शोषित समाज को शिक्षित करने के उद्देश्य से 20 जुलाई, 1946 को 'पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी' नाम की शिक्षण संस्था की स्थापना की। इसी सोसायटी के तत्वाधान में सबसे पहले बम्बई में सिद्धार्थ कॉलेज शुरू किया गया और बाद में उसका विस्तार करते हुए कई कॉलेजों का समूह बनाया गया। ये कॉलेज समूह आज भी शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणीय भूमिका निभा रहे हैं।

बाबा साहब जानते थे कि शिक्षा ही देश में समानता एवं समरसता ला सकती है, क्योंकि शिक्षा सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए एक मात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। एक सुशिक्षित आबादी, जो ज्ञान और कौशल से पर्याप्त रूप से सज्जित हो न केवल आर्थिक विकास की सहायता के लिए अनिवार्य है, वरन् यह विकास समावेशी हो इसके लिए पूर्व शर्त भी है, क्योंकि शिक्षित और कुशल व्यक्ति ही रोजगार अवसरों, जो विकास प्रदान करेगा, से सर्वाधिक लाभ उठा सकते है।[2] मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने भारत के मानव संसाधान क्षमता को समानता और उत्कृष्टता के साथ पूर्णता का अनुभव करने के दर्शन के साथ समावेशी कार्यसूची पर फोकस किया है।

मानव इतिहास के आदिकाल से शिक्षा का विविध भांति विकास एवं प्रसार होता रहा है। प्रत्येक देश अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक अस्मिता को अभिव्यक्ति देने और पनपाने के लिए और साथ ही समय की चुनौतियों का सामना करने के लिए अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रणाली विकसित करता है, लेकिन देश के इतिहास में कभी–कभी ऐसा समय आता है, जब मुद्दतों

से चले आ रहे उस सिलसिले को एक नई दिशा देने की नितान्त जरूरत हो जाती है। आज वही समय है।

हमारा देश आर्थिक और तकनीकी लिहाज से उस मुकाम पर पहुंच गया है, जहाँ से हम अब तक के संचित साधनों का इस्तेमाल करते हुए समाज के हर वर्ग को फायदा पहुंचाने का प्रबल प्रयास करें। शिक्षा उस लक्ष्य तक पहुंचने का प्रमुख साधन है।[3]

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में झोपड़ी बनाकर रह रहे वर्ग के लिए सरकार आवास की मुहिम चलाये, जिसमें उन्हे शौचालयों से युक्त मकान प्रदान की जाए अथवा अनुदान स्वरूप राशि दी जाए। यह राशि उनको मिले एवं यह देखा जाए कि जिस मद से राशि प्रदान की गई है खर्च भी उसी मद में हो।

हाल ही के समय में मध्य प्रदेश सरकार ने घोषणा की है कि जो जनजातीय छात्र विज्ञान विषय में अच्छे अंक लायेगा उसे 50 हजार रूपए प्रोत्साहन राशि दी जायेगी।[4] तथा आादिवासी समुदाय से आने वाले समस्त छात्रों का पहली कक्षा से लेकर कॉलेज तक के अध्ययन की फीस सरकार उठायेगी।[5]

उपरोक्त कदम निश्चित ही सराहनीय हैं। इसके साथ ही आवश्यक है कि आदिवासी युवाओं को कार्य करने के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाए, जिससे कि वे अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि करें, और कुशल कामगार के रूप में अपनी पहचान बना सकें। इन कामगारों के जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए इन्हें स्व रोजगार हेतु ऋण प्रदान किया जाय, जिसका ब्याज कुछ वर्षो तक सरकार वहन करे, जिससे इनका रोजगार स्थापित हो सके। फिर इनके द्वारा तैयार किये गए उत्पादों को बाजार में बेचने के लिए सीधी प्रक्रिया हो जिससे बिचौलिया उनके फायदे में हिस्सेदारी न ले पायें तथा सारा मेहनताना कमजोर वर्ग को ही प्राप्त हो। आज के समय में ऋण प्राप्त करने की प्रक्रिया में ही प्राप्त राशि का बहु भाग खत्म हो जाता है। ऋण की जो राशि ऋण प्राप्त करने वाले व्यक्ति को मिलती है, उससे उद्योग चल नहीं सकता है, तो ऋण लेने वाला ही खा–पी जाना चाहता है, जिससे सरकार की योजना असफल होती है एवं दलित वर्ग दलित ही बना रहता है। इस प्रशासनिक तंत्र में सुधार होना आवश्यक है।

सभी दलित वर्ग का एक आर्गनाइजेशन बनाया जाए, जिसके कार्य करने वाले लोग इसी वर्ग से आते हों। इनके साथ काम करने के लिए समूहों का गठन किया जाना चाहिए। जो समूह की महिलाओं को वर्मी कंपोस्ट बनाने, जूतियां बनाने, सिलाई कढ़ाई, दरी बनाना, गलीचा बनाना, बूंदी बांधना, लाख की चूड़ियां बनाने, अचार, पापड़ व मगोड़ी बनाने, कपड़े के

बैग और पायदान बनाने आदि विद्याओं में प्रशिक्षण प्रदान करें। इससे इन महिलाओं की आर्थिक स्थिति में सुधार आयेगा और लोग आत्मनिर्भर बनेगें।

यह एक प्रमाणिक तथ्य है कि हुनर सीखने के उपरान्त अनेक महिलाओं एवं पुरुषों ने स्वयं को सफलता पूर्वक स्वरोजगार अथवा रोजगार से जोड़कर अपने अथवा अपने परिवार को स्वावलम्बी बनाने का सफल प्रयास किया है। अपने गॉव की एक घटना का उल्लेख करना समीचिन होगा जहां आराधना नाम की एक महिला ने बैंक से 15000 रुपये का कर्ज लिया। इस पैसे से आराधना ने सिलाई मशीन खरीदी और घर पर सिलाई का काम शुरू किया। इससे अराधना और उसके बेरोजगार पति दोनों को रोजगार मिल गया। अब दोनों की कमाई से उनके परिवार का खर्च आसानी से चल रहा है। आराधना का कहना है कि इस मदद ने उसे दूसरों की गुलामी से निजात दिलाई है। देश में ऐसे ही हजारों उदाहरण आज गिनाए जा सकते हैं।

भविष्य को ध्यान में रखकर प्रधानमंत्री द्वारा संचालित 'उन्नत भारत अभियान' जो गांव के विकास के लिए शैक्षिक संस्थानों, अनुसंधान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचार और स्थानीय समुदाय की भागीदारी की पहल है, के कारण एक नवीन उत्साह का संचार हुआ है। यह कोशिश की केन्द्र का हर उच्चशिक्षा संस्थान गांव के साथ जुड़े, गांव के लोगों के साथ संवाद स्थापित करें और गांव के समग्र विकास में योगदान करें निश्चित ही गांवों के विकास में सहायक सिद्ध होगा। यह प्रयास ग्रामीण विकास के लिए महत्वपूर्ण मानदंडों को जनमानस की सहभागिता, व्यावसायिकता (professionalism) और संसाधनों के अभिसरण (convergence) की त्रयात्मक एकता के रूप में प्रस्तुत करता है।[6]

आरक्षण पर न्यायोचित विचार

जब हम दलित वर्ग के विकास की बात करते हैं तो आरक्षण की बात हमारे सामने आ जाती है। प्रारंभ काल में आरक्षण को एक वैशाखी के रूप में रखा गया था। यह आरक्षण उन लोगों के लिए था जो प्रतिभा सम्पन्न तो हैं परन्तु मौके के अभाव में वे योग्य स्थान तक नहीं पहुॅच पा रहे हैं, ऐसे लोगों को आरक्षण देने की बात हमारे संविधान में रखी गई थी, परन्तु आज इसमें राजनीति ने प्रवेश कर लिया है, और यह जातिगत अथवा धर्मगत हो गया है। जिन्हें वास्तव में आरक्षण की आवश्यकता है, वे आज भी उसी के मोहताज हैं, जबकि वे वास्तविक हकदार हैं।

वर्तमान स्थिति में आरक्षण का अधिक से अधिक लाभ केवल उन्हें मिलता है जो केवल जाति से पिछड़े हुए हैं वास्तव में नहीं। वास्तव में पिछड़े हुए परिवार आज भी समानता के

अधिकार से वंचित हैं और उन्हें मुख्य धारा में लाने की राजनैतिक इच्छा शक्ति किसी पार्टी के पास नहीं है।

आरक्षण की व्यवस्था होने के बावजूद, केवल जाति से पिछड़े और अन्य सामाजिक पैमानों पर विकसित गिने–चुने परिवार ही इसका लाभ ले पा रहे हैं । वास्तव में पिछड़ा हुआ तबका और पिछड़ता जा रहा है। अमानवीय स्थितियों में रहने वाला गरीबी और अशिक्षा से पीड़ित यह तबका तभी मुख्य धारा में आ पायेगा जब उनके समजातीय परिवार जो आरक्षण का लाभ लेकर मुख्य धारा से जुड़ सके, वे अपने बाद के लोगों के लिए पथ प्रशस्त करे और सक्षम आरक्षण का लाभ न लें। जब तक इस व्यवस्था में सुधार नहीं होगा, समाज का एक बड़ा हिस्सा हमेशा के लिए पिछड़ा ही रहेगा।

आरक्षण आरक्षित वर्ग को सुविधाएँ प्रदान कर के किया जाना चाहिए न कि नौकरियों में आरक्षण प्रदान कर। सरकार को चाहिए कि वह अच्छे हॉस्टल बनाये, योग्य शिक्षक रखे, कोचिंग की पूर्ण व्यवस्था करे। यहॉ तक कि ऐसे विद्यार्थियों के माता–पिता को भी वजिफा भी दे। परन्तु जो व्यक्ति मेहनत करता है, अध्ययन करता है, कार्य सिद्धी के लिए योग्य उद्यम करता है, और प्रतिस्पर्धा में पारंगत होता है, उसे ही नौकरी मिले। चाहे वो किसी भी जाति का हो। योग्य है इसलिए नौकरी कर रहा है।

इस विकल्प से आलसी, उद्देश्यहीन, अकर्मण्ड व्यक्ति को वे स्थान नहीं मिलेगें जिनके वे अधिकारी ही न हों। इससे सभी में यथार्थ एवं स्वस्थ्य प्रतिद्वन्दता जन्म लेगी जो उस व्यक्ति एवं राष्ट्र की उन्नति में भी सहायक होगी।

यदि इन विचारों को वास्तविकता के धरातल पर उतार दिया जाये तो सम्पूर्ण दलित वर्ग का उत्थान हो सकता है। जो दलित वर्ग आज अपने को शक्तिहीन, कमजोर, और निःसहाय मानता है, वही इनके साथ मिलकर शक्ति सम्पन्न, आत्मविश्वास से युक्त और स्फूर्तिवान दिखाई देगें। सम्पूर्ण दलित वर्ग का कल्याण उनके शैक्षणिक रुप से जागरूक होने और उनके विकास में सरकार का सहयोग निहित होने से ही हो सकता है।

संदर्भ

1. सी. डी. नाइक *बौद्धवचन और अम्बेड़कर विचार,* कल्माज पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ 107।
2. XII वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण का पैरा 10.1।
3. hi-wikibooks-org/wiki/ राष्ट्रीय–शिक्षा–नीति,–1986।
4. रोजगार और निर्माण 29/02/2016 से 06/03/2016 भोपाल से प्रकाशित, पृष्ठ 26।
5. वही पेज 26 पर।

प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग ही कर्मयोग है

– पुष्पा तिवारी

उपयुक्त संसाधनों के अभाव में व्यक्ति का जीवन संघर्षपूर्ण हो जाता है। लेकिन साधन सम्पन्न जीवन निश्चित रुप से सुखद ही होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता। अड़चनें, उलझने और चुनौतियां तो हर किसी के जीवन में आती हैं। इन सबके बावजूद व्यक्ति खुश रहना चाहता है। इसलिए एक ओर तो वह अपने तथा अपने परिवार के जीवन के लिए उपयुक्त और प्रर्याप्त संसाधनों की तलाश करता है तो दूसरी ओर वह निजी, पारिवारिक, सामाजिक तथा कार्य क्षेत्र की अड़चनों, उलझनों एवं चुनौतियों से संघर्ष करता हुआ उनसे निजात पाना चाहता है। विविध समस्याओं के इस चक्रव्यूह को तोड़ना सहज नहीं होता है। इसके लिए इच्छा–अनिच्छा, हानि–लाभ, पाप–पुण्य, अच्छा–बुरा, काम–क्रोध, जीवन–मरण, नीति–अनीति, हिंसा–अहिंसा, स्वार्थ–प्रेम, और अन्ततः कर्म और उसके निष्काम स्वरुप की समझ को जरुरी समझा जाता है। इन सभी की समझ यूं ही नहीं विकसित होती। अनुभव और अध्ययन इन सभी के राज खोलते हैं। जैसे – जैसे व्यक्ति की समझ गहरी होती जाती है संधर्षों में भी जीवन संतुलित सुखद होता जाता है।

मानव ने अपने अस्तित्व के लम्बे दौर में ऐसी कई ग्रन्थों की रचना की जो इस समझ की राह में उसका पथ प्रदर्शन करते हैं। भगवद्गीता मनुष्य को प्राप्त एक ऐसी ही सौगात है जो उसे संसार में रहना सिखाती है। संसार रूपी काजल की कोठरी में रहकर हम काजल की कालिमा से कैसे बच सकते हैं यह गीता की शिक्षा है। गीता प्राणी मात्र के लिये है । व्यक्ति के अन्दर के देवत्व को पुष्ट करना ही गीता का प्रयोजन है। गीता में सम्पूर्ण जीवन प्रबंधन का राज समाहित है ।

1. गीता का अर्थ ज्ञेय है यह शब्द विशेषण के रूप में उपनिषद के साथ प्रयुक्त होता है जो स्त्रीलिंग है। गीता कामधेनु की भांति है जो सम्पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति करती है। इसलिये वह माता कहलाती है। उसके लिये अगर हम याचक दुधमुहे बच्चे की तरह मांग करें तो वह अमर माता हमें सम्पूर्ण दूध दे देती है। उसमें अपने लाखों बच्चों को अपने सहस्त्र थनों से दूध देने की क्षमा है।
2. संसार हमसे बाहर नहीं है। वह हमारे मन में है। जब तक मन संसार में लिपटा रहता है तब तक छुटकारा पाना कठिन है। परन्तु गीता हमें इसके लिये एक उपाय बतलाती है। वह है कर्मयोग। गीता कर्मयोग रूपी ऐसा रसायन प्रदान करती है जिससे हम संसार में रहकर भी उसके पाशों में नहीं बंधते।

कर्मयोग का महत्व

शैक्षिक जीवन में जो जिम्मेदारियॉ शिक्षकों को मिलती हैं उसी में उनको अपना बेहतर प्रस्तुतीकरण करना है यही कर्मयोग है। उदाहरणार्थ कक्षा लेते समय अपने विषय को सरलता से समझाना ताकि वह विद्यार्थियों को सही तरह से समझ में आ जाये, विभिन्न शिक्षण कौशलों का प्रयोग करना बताना। जब शिक्षण में शारीरिक व मानसिक क्रियाएं एक साथ लगेगी तो वह शिक्षण सुन्दरतम् होगा और यही योग है।

इसी तरह खेल जगत में भी शारीरिक क्रिया के साथ मानसिक क्रियाएं अनवरत रूप से चलती रहती हैं। उदाहरणार्थ, हॉकी खेलते समय किस तकतीकी का प्रयोग करने से हम बॉल को गोल तक पहुॅचा सकते हैं जैसे ही दोनों क्रियाओं का मेल होगा, हम अपने उद्धेश्य में सफल होंगे। यही तो है कर्मयोग।

इसी तरह चित्रकारी करते समय जब हम एकाग्र भाव से रंगों का प्रयोग करते हैं तो वह कला तीन आयामों में उभर कर आती है और यह तभी सम्भव है जब आप मन व शरीर को एकाग्र कर पाते हैं। यही कर्मयोग है। उदाहरणार्थ –

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोक सऽग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।।

राजा जनक जैसे अनेक महापुरूष भी कर्म (कर्मयोग) के द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे। इसलिये लोकसंग्रह को देखते हुए भी (तू) (निष्काम भाव से कर्म) करने के लिये ही योग्य है। अर्थात कर्म अवश्य करना चाहिए।

भगवान स्वयं भी साधुओं का संरक्षण, दुष्टों का नाश और धर्म की संस्थापना ऐसे लोकसंग्रह के काम के लिये समय–समय पर आवतार लेते हैं –

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संम्यवामि युगे युगे।।

श्री भगवानुवाय
इदमं विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत।।

श्री भगवान बोले– मैने इस अविनाशी योग को (कर्मयोग) सूर्य से कहा था (फिर) सूर्य ने (अपने पुत्र) (वैवस्वत) मनु से कहा और मनु ने (अपने पुत्र) राजा इक्ष्वाकु से कहा। भगवान ने जिन सूर्य, मनु और इक्ष्वाकु राजाओं का उल्लेख किया है वे सभी गृहस्थ थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही कर्मयोग के द्वारा परम सिद्धि प्राप्त की थी। जिस प्रकार अर्जुन महान ज्ञानी नर ऋषि के अवतार थे परन्तु लोकसंग्रह के लिये उन्हें भी उपदेश लेने की आवश्यकता हुई। ठीक उसी प्रकार भगवान ने स्वयं ज्ञान स्वरूप सूर्य को उपदेश दिया जिसके फलस्वरूप संसार का महान उपकार हुआ है, हो रहा है और होता रहेगा।

कर्मयोग गृहस्थों की खास विद्या है ब्रहमचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इन चारों आश्रम में गृहस्थ आश्रम ही मुख्य है क्योंकि गृहस्थ आश्रम से ही अन्य आश्रम बनते और पलते हैं। मनुष्य गृहस्थ आश्रम में रहते हुए अपने कर्तव्य और कर्मो का पालन करके सुगमतापूर्वक परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है। उसे परमात्मा के प्राप्ति के लिये आश्रम बदलने की जरूरत नहीं है। श्री कृष्ण भगवान व अर्जुन भी गृहस्थ थे। इसलिये भगवान अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण गृहस्थों को सावधान करते हैं कि तुम लोग अपने घर की विद्या कर्मयोग का पालन करके घर में रहते हुए भी परमात्मा को प्राप्त कर सकते हो, तुम्हें दूसरी जगह जाने की जरूरत नहीं है।

किसी विद्या में श्रेष्ठ व प्रभावशाली लोगों का नाम लेने से उस विद्या की महिमा प्रकट होती है जिससे दूसरे लोग भी वैसा ही करने के लिये उत्साहित होते हैं । जिन लोगों के हृदय में सांसारिक पदार्थों का महत्व है उन पर ऐश्वर्यशाली राजाओं का अधिक प्रभाव पडता है। इसलिये भगवान राजाओं का नाम लेकर कर्मयोग का पालन करने की प्रेरणा देते हैं।

जिस प्रकार आकाशवाणी केन्द्र के द्वारा प्रसारित विशेष शक्ति युक्त ध्वनि सब जगह फैल जाती है पर रेडियो के द्वारा जिस नम्बर पर उस ध्वनि से एकता (सजातीयता) होती है उस नम्बर पर वह ध्वनि पकड़ में आती है। इसी प्रकार जब कर्मयोगी स्वार्थभाव का त्याग करके केवल संसार मात्र के हित के भाव से ही समस्त कर्म करता है तब भगवान की सर्वव्यापी हितैशिणी शक्ति से उसकी एकता हो जाती है और उसके कर्मों में विलक्षणता आ जाती है। भगवान की शक्ति से एकता होने से उसमें भगवान की शक्ति ही काम करती है और उस शक्ति के द्वारा ही लोगों का हित होता है। इसलिये कर्तव्य, कर्म करने में न तो कोई बाधा लगती है और न ही परिश्रम का अनुभव ही होता है।

सेवा वह है जो परिस्थिति के अनुरूप की जाये। कर्मयोगी न तो परिस्थिति बदलता है न परिस्थिति ढूंढता है। वह तो प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करता है। प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग ही कर्मयोग है। प्राचीन काल में कर्मयोग को जानने वाले राजा, राज्य के भागों में आसक्त हुए बिना सुचारू रूप से राज्य का संचालन करते थे। प्रजा के हित में उनकी

स्वाभाविक प्रवृति रहती थी। सूर्यवंशी राजाओं के विषय में महाकवि कालिदास लिखते हैं –

प्रजानामेव भूत्यर्थ स ताम्यो बलिमग्रहीत।
सहसत्रगुणमुत्स्त्रष्टुमादन्ते हि रसं रविः।।

वे राजा अपनी प्रजा के हित के लिये प्रजा से उसी प्रकार कर लिया करते थे जिस प्रकार सहस्त्रगुना बनाकर बरसाने के लिये ही सूर्य पृथ्वी से जल लिया करते हैं।

कर्मयोग का पालन करने के कारण उन राजाओं को विलक्षण ज्ञान और भक्ति स्वतः प्राप्त थी। यही कारण था कि प्राचीन काल में बड़े–बड़े ऋषि भी ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन राजाओं के पास जाया करते थे। वेदव्यास जी के पुत्र शुकदेव जी भी ज्ञान प्राप्ति के लिये राजर्षि जनक जी के पास गये थे।

उपसंहार

इस तरह विदित है कि मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करके परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है। उसे परिस्थिति बदलने की आवश्यकता नहीं है। प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग ही कर्मयोग है जैसे – सूर्य, मनु, राजा जनक इत्यादि राजाओं ने किया। गीता में भगवान कृष्ण ने कर्म को प्रधानता दी है –

यतः प्रवृतिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है। उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य मात्र सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

संदर्भ

1. गीता तत्व चिन्तन – स्वामी आत्मानन्द (भाग –1)।
2. गीता – माता, बापूज लैटर्स टू मीरा, 24 फरवरी 1933।
3. श्लोक – गीता 3/20।
4. श्लोक – गीता 4/8।
5. श्लोक – गीता 4/1।
6. श्लोक – गीता 1/18।
7. श्लोक – गीता 18/46।

स्त्री–शिक्षा, मुक्ति और मानवाधिकार

–सरोज कुमार वर्मा

''अजब जुनूने–मुसाफत' में घर से निकला था
खबर नहीं है कि सूरज किधर से निकला था
ये कौन फिर से उन्ही रास्तों में छोड़ गया
अभी–अभी तो अजाबे–सफर से निकला था''

– अहमद फराज़

1. यात्रा का जुनून में, 2. यात्रा की पीड़ा

किसी भी विमर्श के दो आयाम होते हैं। एक तो यह कि उस विषय से संबंधित आंकड़ों और अनुपातों की फेहरिस्त गिनाकर उसमें होने वाली वृद्धि को उपलब्धि मानते हुए अपनी पीठ ठोकी जाए अथवा उसमें होने वाली कमी को नाकामी बताते हुए माथे पर चिंता की लकीरें खींच ली जाएं। इसे विमर्श का गणनात्मक आयाम कहा जा सकता है। दूसरा यह कि उस विषय के अर्थ, स्वरूप और उद्देश्य को स्पष्ट कर अपेक्षित लक्ष्य–पूर्ति का मूल्यांकन किया जाए। यह विमर्श का दार्शनिक आयाम होता है। शिक्षा पर भी यही बात लागू होती है इसलिए स्त्री–शिक्षा–विषयक विमर्श के भी दो आयाम हो जाते हैं। एक गणनात्मक, जिसमें महिलाओं के शिक्षित होने के कालिक आंकड़ों के साथ सेवा तथा अन्य रोजगार प्राप्त करने वाली महिलाओं के अनुपातों की सूची प्रस्तुत कर दी जाए और दूसरा दार्शनिक, जिसमें महिलाओं को कैसी शिक्षा दी जा रही है और उससे किन उद्देश्यों की प्राप्ति हो रही हैं, इस पर विचार किया जाए। और इसी के साथ यह भी नत्थी किया जाए कि क्या इससे अपेक्षित अभीष्ट की सिद्धि हो पा रही है? स्त्री–शिक्षा की वर्तमान दशा एवं दिशा पर विचार करने के संदर्भ में, यद्यापि कि गणनात्मक आयाम की अपनी उपयोगिता और महता है, विमर्श का यह दार्शनिक आयाम अपेक्षाकृत ज्यादा गहन और प्रासंगिक है, क्योंकि इससे स्त्री की वर्तमान दशा का तो मूल्यांकन होता ही है, उसके भविष्य की दिशा की भी समीक्षा हो जाती है।

इस विमर्श की शुरूआत शंकराचार्य की उस परिभाषा से की जा सकती है, जिसमें वे शिक्षा को मुक्ति का साधन मानते हैं। उनके अनुसार विद्या वही है जो मुक्त करें – 'सा विद्या या विमुक्तये।' शंकराचार्य के इस पैमाने पर यदि देखा जाए तो वर्तमान में स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने पर भी मुक्त नहीं हुई हैं। हालांकि अतीत में ऐसा नहीं था। भारतीय इतिहास के वैदिक काल में स्त्रियों को मुक्ति प्राप्त थी। उन्हें कुलदेवी का स्थान हासिल था। शिक्षा का समान अधिकार मिला था। तभी तो वे ज्ञानी, विदुषी और पंडिता हुआ करती थीं। स्त्रियों द्वारा रची गई वेद की कई ऋचायें इसके प्रमाण है। संपत्ति पर उनका समान अधिकार था। आपस्तम्ब–धर्म–सूत्र (2/29/3) में इसका उल्लेख मिलता है। घर की स्वामिनी होने के

बावजूद वे घर से बाहर निकलती थीं। क्षत्राणियां तो युद्ध में सारथ्य का दायित्व भी संभालती थीं। किन्तु कालान्तर में उनकी स्थिति ऐसी नहीं रही। उनकी मुक्ति के द्वार बंद होते गए। उनके अधिकार छिनते चले गए। पुरूषों ने अपने लिए जो नियम–कानून बनाये, स्त्रियों को उनसे वंचित कर दिया। पति की सेवा, बच्चे का जन्म तथा घर के काम–काज तक उनकी जिंदगी सिमट गई। पुरूषों ने उन्हें पराधीन, हेय और अशिक्षित करके घर में कैद कर दिया। वे एक ऐसी निर्जीव वस्तु के समान हो गई जो अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध उफ् भी नहीं कर सकती थीं। विवेकानंद इसका मूल कारण अशिक्षा को मानते हैं। वे इस स्थिति की पड़ताल करते हुए कहते हैं – ''यह समझना बड़ा कठिन है कि इस देश में स्त्रियों और पुरूषों की बीच इतना भेद क्यों रखा गया है, जबकि वेदांत की यह घोषणा है कि सभी प्राणियों में वही एक आत्मा विराजमान है। स्मृतियां आदि सीख कर और स्त्रियों पर कड़े नियमों का बंधन डालकर पुरूषों ने उन्हें केवल सन्तानोत्पादक यंत्र बना रखा है। अवनति के युग में जबकि पुरोहितों ने अन्य जातियों को वेदाध्ययन के अयोग्य ठहराया, उसी समय उन्होनें स्त्रियों को भी अपने अधिकारों से वंचित कर दिया। पर वैदिक और औपनिषदिक युग में तो मैत्रेयी, गार्गी आदि पुण्यस्मृति महिलाओं ने ऋषियों का स्थान ले लिया था। सहस्त्र वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने याज्ञवल्कय को ब्रहम् के विषय में शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा था।' इसलिए वे आगे कहते हैं – ''स्त्रियों की बहुत सी कठिन समस्याएं हैं पर उनमें एक भी ऐसी नहीं, जो उस जादू भरे शब्द शिक्षा द्वारा हल न हो सके।''

विवेकानंद का यह कथन भारतीय पुनर्जागरण काल का है, जिसमें स्त्रियों की मुक्ति के लिए उनकी शिक्षा पर सघन रूप से ध्यान गया। भारत में पुनर्जागरण का काल 19वीं सदी है और इसके अग्रदूत राजा राममोहन राय थे। उन्होंने ही स्त्रियों की मुक्ति के लिए सबसे पहला संगठित प्रयास किया। इसी प्रयास के कारण सती–प्रथा जैसी कुरीतियां बंद हुई और बाल–विवाह पर भी अंकुश लगे। स्त्रियों की शिक्षा के बारे में भी प्रतिबद्ध रूप से सोचा जाने लगा तथा उनकी स्वतंत्रता के विचार भी उभरने लगे। किन्तु राजा राममोहन राय का प्रयास बेहद प्रतिक्रियावादी था। इसलिए उन्हें जितनी सफलता मिलनी चाहिए, उतनी नहीं मिली। तब स्वामी दयानंद ने स्त्रियों की दशा में सुधार लाने के लिए संतुलित प्रयास प्रारंभ किया। उनका 'आर्य समाज' इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगा। इसी क्रम में 'प्रार्थना समाज' की भूमिका भी रेखांकित की जाने लगी और ऐनी बेसेंट भी अपनी 'थियोसोफिकल सोसाइटी' द्वारा स्त्रियों की स्थिति सुधारने हेतु प्रयासरत हुई। इसके बाद स्वामी विवेकानंद ने इस दिशा में अहम योगदान दिया और अंत में महात्मा गांधी ने इस अभियान को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ दिया। इस जोड़ के लिए ही उन्होंने चम्पारण में सत्याग्रह करते हुए कस्तूरबा को बुला कर वहां की स्त्रियों की दुर्दशा जानने का प्रयास किया और वहां शिक्षा के लिए जो विद्यालय खोले गए उनमें स्त्रियों की शिक्षा की भी व्यवस्था की गई। उन विद्यालयों में कस्तूरबा के अतिरिक्त आनंदी बाई, अवंतिका बाई, दुर्गा बहन तथा मणि बहन जैसी शिक्षिकाएं रखी गई। इस प्रयास के कारण बीसवीं सदी के राष्ट्रीय जागरण–काल में स्त्री–मुक्ति का मसला एक

व्यापक जन–सरोकार से संबंद्ध हो गया। किंतु इस संबद्धता के बावजूद स्वतंत्रता–संग्राम की तीव्रता के कारण यह मसला समाधान की दिशा में दूर तक नहीं जा सका। यह यात्रा कोई तीन–चार दशक पहले के स्त्रीवादी आंदोलनों में फिर से शुरू हुई जब वैचारिक स्तर पर स्त्री–मुक्ति की नई लहर उठी। इस लहर ने स्त्रियों की मुक्ति के कई द्वार खोले। उन्हें घर से बाहर निकलने की सुविधा मिली। अर्थोपार्जन के अवसर उपलब्ध हुए। उनकी स्वतंत्रता, समानता तथा शिक्षा के अधिकारों को बल मिला। उनके दायित्वों का संकुचित दायरा टूटा। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भागीदारी मिली। उन पर लगी कई प्रकार की पाबंदियां और वर्जनायें ख़त्म हुईं। इनसे उनकी बंद दीवारों में दरवाजे खुले। उन्होंने बाहर आकर सुनहरी धूप और ताजा हवा का स्वाद लिया। मुक्त आकाश में उड़ने के लिए अपने पंख फैलाए।

मगर त्रासदी यह हुई कि वे उड़ नहीं सकी। बाजारवाद और उपभोक्तावाद के रंगीन–चमचमाते जाल ने उन्हें अपने में कैद कर लिया। वे एक बंधन से मुक्त होकर दूसरे बंधन में जकड़ गई। यह कुएं से निकल कर खाई में गिरने जैसा हुआ। किन्तु विडंबना यह कि उन्हें इसका गुमान तक नहीं हुआ। वे इस महीन बंधन को ही अपनी मुक्ति का पर्याय मानने लगीं। ऐसा इसलिए हुआ कि औद्योगिक क्रांति और प्रगति के फलस्वरूप जो आधुनिक सभ्यता विकसित हुई उसका केन्द्र बाज़ार है। इसलिए बाजार का दबाव आज हर क्षेत्र में है। आदमी की सोच, शैली, गति तथा दिशा सब बाजार तय कर रहा हैं। रविभूषण के शब्दों में – ''बाज़ार अब किसी स्थल–विशेष में नहीं है। वह सर्वत्र है। उसका एक वाद विकसित हो चुका है, जिसे 'बाजारवाद' कहा जाता है। यह प्रमुख नहीं है कि अर्थशास्त्र में यह 'वाद' प्रयुक्त होता है या नहीं। बाजार की व्यापक उपस्थिति से, उसके सिद्धांत और दर्शन से 'बाजारवाद' जुड़ा है। बाज़ार अब मूल्य, व्यवस्था, संस्थान, विचार–दर्शन, जीवन–दर्शन में बदल गया है। इसने उपभोक्तावाद को जन्म दिया है।'' वित्तीय पूंजी, कॉरपोरेट पूंजी, याराना (क्रोनी) पूंजी से बाजार का सीधा संबंध है। शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो, जहां इसकी पहुंच न हो। इसने हमारे वित्त और मानस को एक साथ प्रभावित, नियंत्रित और अनुकूलित किया है।'' इसी प्रभाव, नियंत्रण और अनुकूलन द्वारा बहुराष्ट्रीय कंपनियां रोज नए–नए उत्पाद निर्मित कर पूरी दुनिया में बेचती हैं और इन उत्पादों को उपभोक्ता खरीद सके, इसके लिए विज्ञापन द्वारा उन्हें आकर्षित–सम्मोहित करती हैं। स्त्रियां इसका माध्यम बन रही हैं। वे अपने रंग–रूप, नाज–नखरों के सहारे इन उत्पादों को बेचने में लगी हैं और प्रकारान्तर से स्वयं बिक रही हैं। जब कोई स्त्री विज्ञापन में चप्पल, टायर, ठंढ़ा पेय, मजबूत सिमेंट अथवा सुविधाजनक गाड़ी बेच रही होती है तो इन सबके साथ खुद भी बिक रही होती है और इसके लिए वस्त्र उतारने से भी परहेज नहीं करती।

इस प्रकार बाजार, विज्ञापन तथा प्रसाधन आदि इस नई सभ्यता द्वारा स्त्रियों के लिए निर्मित किया हुआ नया बंधन है, जो पहले से ज्यादा आकर्षक और खूबसूरत होने के कारण उन्हें सहज स्वीकार्य लगता हैः जबकि यह अपेक्षाकृत ज्यादा ठोस और सख़्त है। किन्तु चूंकि

यह बंधन ज्यादा मोहक और नफीस तरीके से निर्मित किया गया है, इसलिये स्त्रियां इसे ही अपनी मुक्ति की परिभाषा मान रही हैं। लेकिन यह कितनी बड़ी विडंबना है कि स्त्री की मुक्ति और अधिकार के संघर्ष को देह की नग्नता और उपयोग की स्वच्छंदता से परिभाषित किया जाए। उसे वर्जनाओं से मुक्ति मिलने के बदले वस्त्रों से मुक्ति मिले। स्त्रियों ने बंधन का प्रतीक मानते हुए अपने पुराने गहने इसलिए नहीं उतारे थे कि अपने बाल को काले–चमकते रखने, गाल को सुर्ख–लाल रखने तथा अंग–अनुपात का सौष्ठव बनाये रखने जैसे शरीर के रख–रखाव संबंधी नए गहनों से सज–धज कर बाजार में बिकने के लिए बैठे जाए। प्रभाकर श्रोत्रिय इस पर विस्तार से विचार करते हुए लिखते हैं – ''यह सूक्ष्म और वायवीय कैद पहले की कैदों से ज्यादा मज़बूत है। यह अधिक चुनौतीपूर्ण इसलिए हो उठा है कि स्वयं स्त्रियों का एक वर्ग नए भ्रमजाल में फंसकर स्त्री मात्र को फंसा रहा है, बिना यह सोचे कि साबुन के सान्निध्य में प्रेमिका जैसी लाज, घोड़ा, साबुन और हवाखोरी के रिश्ते; सांसों की खुशबु से प्रेम संबंध का निर्धारण, असंख्य स्त्रियों को क्या संदेश दे रहा है? स्त्री क्यों इन्कार नहीं करती कि वह बाजार का माध्यम नहीं बनेगी। अपनी व्यावसायिक आत्म–निर्भरता के बदले लाखों–करोड़ों स्त्रियों को वस्तुओं का दास नहीं बनायेगी।''

स्त्रियों के इस इन्कार नहीं करने के पीछे वर्तमान शिक्षा है, क्योंकि यह शिक्षा बाजार–केन्द्रित है। इस शिक्षा में सिर्फ बाजार में खरीद–फरोख्त का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें रोजगार प्राप्ति के नाम पर गलाकाट प्रतिस्पर्धा सिखायी जाती है और किसी भी नीति–अनीति की चिंता किए बग़ैर अत्यधिक धन कमाने की होड़ में डाल दिया जाता है। आज इंजिनियरिंग, मेडिकल अथवा बिजनेस मैनेजमेंट में दाखिला लेने के लिए जो आपाधापी मची रहती है उसकी वजह यही है। इनकी डिग्री ले लेने पर उच्च वेतन की नौकरी मिल जाती है जिससे अधिक आय प्राप्त कर अत्यधिक उपभोग किया जा सकता है। इस प्रकार यह शिक्षा भोगोन्मुखी है तथा केवल सूचना और तकनीक पर आधारित है। इसमें ज्ञान और नैतिकता का कोई समावेश नहीं है, चरित्र और मूल्य की कोई जगह नहीं है। आज की स्त्रियां यही ज्ञान, नीति, चरित्र और मूल्यों से रहित शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। इसलिए उन्हें अपने वायवीय बंधन और मोहक कैद का पता नहीं चलता। वे बाजार और उपभोग के प्रवाह में वही जा रही हैं। अनिल सद्‌गोपाल शिक्षा में आए इस बदलाव पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं – ''ज्ञान की भूमिका हमेशा से ही रही है। जबसे इंसान और इंसानियत का इतिहास शुरू हुआ, उसी समय से ज्ञान का इतिहास है। जिस तरह गोल पहिया वाहन के रूप में इस्तेमाल होता रहा है, उसी तरह ज्ञान भी एक चक्ररूप में है लेकिन ज्ञान का समाज के साथ संबंध विगत 20 वर्षों (अब 30 वर्षों) में अर्थात उदारीकरण की प्रक्रिया के दौरान तेजी से बदला है। समाज के साथ ज्ञान का संबंध बाजार आदि के दायरे में रखकर समझा जा रहा है। वह ज्ञान जो समाज के लिए उपयोगी हो, देश के लिए उपयोगी हो, इंसानियत पैदा करता हो, उस ज्ञान को आज ज्ञान नहीं माना जा रहा है। ज्ञान के चरित्र, उसके उपयोग में बदलाव हुआ है। ज्ञान की भूमिका बदली है। आज हम बायोटेक्नोलॉजी की बात करते हैं, लेकिन

बायोटेक्नोलॉजी की शुरूआत जिस विज्ञान से हुई उसे हम भुलाये जा रहे हैं। अर्थात् हम मूल ज्ञान को भूल रहे हैं। हमें याद रखना होगा कि बिना बुनियाद के हम ज्ञान को प्रसारित नहीं कर सकते। हम बाजार की चका–चौंध में बहे जा रहे हैं।''

स्त्रियां भी इसी चका–चौंध में बहने के कारण अपनी मुक्ति के नैसर्गिक अधिकार से वंचित हुई जा रही हैं। समानता की समतल जमीन उन्हें उपलब्ध नहीं हो पा रही है। वे आज भी दोयम दर्जे का जीवन जी रही हैं। उन्हें अन्य समझा जा रहा है तथा अधीनस्थ भूमिका निभाने के लिए बाध्य किया जा रहा है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि स्त्री–शिक्षा की वर्तमान दशा और दिशा दोनों ठीक नहीं हैं। इस शिक्षा से न तो स्त्रियों को समानता की ठोस जमीन मिल पा रही है, न उन्हें स्वतंत्रता का खुला आकाश मिलने वाला है। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान शिक्षा में बदलाव किया जाए। यह बदलाव व्यावसायिक और तकनीकि शिक्षा के साथ मूल्य और नैतिकता की शिक्षा को समाहित कर किया जा सकता है। के. सच्चिदानंदन इसकी अनिवार्यता पर बल देते हुए लिखते हैं – ''चूंकि आज का दौर बाजार का दौर है, इसलिए इसमें मौजूदा शिक्षा–पद्धति की सामाजिक भूमिका कम हो जाती है। आज ज्यादातर लोग सिर्फ नौकरी के लिए पढ़ाई करते हैं, जो कि गलत है। विश्वविद्यालयों की यह जिम्मेदारी होती है कि वह छात्रों को किताबों के साथ–साथ नैतिक ज्ञान की जानकारी भी दें। हर शिक्षण संस्थान को यह कोशिश करनी चाहिए कि वह छात्रों की शिक्षा में नैतिक मूल्यों का समावेश कर अपनी सामाजिक भूमिका तय करें। कोई भी शिक्षण संस्थान यदि अपनी सामजिक भूमिका के बिना जी रहा है तो यह न सिर्फ छात्रों के लिए नुकसानदायक है, बल्कि हमारी सामाजिक व्यवस्था के लिए भी नुकसानदायक है। इसलिए हमें चाहिए कि व्यावसयिक शिक्षा के साथ–साथ नैतिक शिक्षा को बढ़ावा दें।'' इस नैतिक और मूल्यपरक शिक्षा से स्त्री बाजार की चका–चौंध में बहने से बचेगी, विज्ञापन के बहाने स्वयं को बेचने से रोकेगी और वस्त्रों से मुक्ति के बदले वर्जनाओं से मुक्ति के लिए लड़ेगी। वह उपभोग की स्वच्छंदता में अपनी स्वतंत्रता को परिभाषित नहीं करेगी बल्कि अपनी स्त्रीत्व की पहचान को अपनी स्वतंत्रता का पर्याय मानेगी।

इसके लिए स्त्रियों को पुरूषों का अनुकरण करने से भी तौबा करनी पड़ेगी। अभी की शिक्षा व्यवस्था और स्त्रीवादी विमर्श ने स्त्रियों से उनकी अपनी पहचान ही छीन ली है। उन्हें यह बताया है कि स्त्री–मुक्ति का अर्थ पुरूष का अनुकरण करना है, पुरूष जैसा बनना है। उसी की तरह चलना–बोलना है, कपड़ा पहनना–बाल कटाना है, शराब–सिगरेट पीना है, और इस तरह के वे तमाम नैतिक–अनैतिक कार्य करने हैं जो पुरूष करता है। दरअसल ऐसा वे पुरूष से समानता और उसकी जैसी स्वतंत्रता की चाह में करती है, जो वास्तव में पुरूष के हास्यास्पद अनुकरण का शिकार होकर अपनी दशा से च्युत और दिशा से भटक जाना है। मौलिक स्त्री बनने के बदले नकली पुरूष में तब्दील हो जाना है। चूंकि किसी और का प्रतिरूप अपना मूल नहीं हो सकता, इसीलिए ओशो स्त्रियों को इस अनुकरण से बचने की

हिदायत देते हुए कहते हैं – ''यह ध्यान रहे स्त्री के पास एक अपने तरह का व्यक्ति है, जो पुरूष से बहुत भिन्न है, बहुत विरोधी, बहुत अलग, बहुत दूसरा है। उसका सारा आकर्षण, उसके जीवन की सारी सुगंध, उसके अपने होने में हैं, उसके निज होने में है। अगर वह अपनी निजता के बिन्दु से च्युत होती है और पुरूष जैसे होने की दौड़ मे लग जाती है तो यह बात इतनी बेहूदी होगी जैसे कोई पुरूष स्त्रियों के कपड़े पहन के, दाढ़ी–मूंछ घुटा के, स्त्रियों जैसा बनके घूमने लगता है तो वह बेहूदा हो जाता है। यह बात इतनी ही गलत है।'' इसलिए स्त्री, स्त्री के तरह बची रहे, अपनी पहचान को बचाए रखे, अपने स्त्रीत्व को सुरक्षित रखें तभी वह स्वतंत्र, समान और सम्माननीया हो सकती है।

इसके लिए जैसी शिक्षा चाहिए उसका सूत्र विवेकानंद, गांधी, टैगोर, अरविन्द, कृष्णमूर्ति तथा ओशो आदि दार्शनिकों के शिक्षा–विषयक विचारों से मिल सकती है, क्योंकि इन दार्शनिकों ने स्त्रियों के लिए ऐसी शिक्षा का प्रस्ताव दिया है जिससे वे अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए अपने स्त्रीत्व को बचाते हुए, मुक्ति की उड़ान भर सकती हैं, समानता का स्वाद ले सकती हैं। इसे इन दार्शनिकों के कथनों में देखा जा सकता है। विवेकानंद के अनुसार – ''स्त्री–शिक्षा का विस्तार धर्म को केन्द्र बनाकर करना चाहिए।धार्मिक शिक्षा, चरित्र–गठन, ब्रह्मचर्य–पालन – इन्हीं की ओर ध्यान देना चाहिए। इतिहास और पुराण, गृह–व्यवस्था और कला–कौशल, गृहस्थ–जीवन के कर्त्तव्य और चरित्र–गठन के सिद्धांतों की शिक्षा देनी होगी। और दूसरे विषय, जैसी सीना, पिरोना, गृह कार्य–नियम, शिशुपालन आदि भी सिखाए जाएंगे। जप, पूजा और ध्यान शिक्षा के अनिवार्य अंग होंगे। दूसरे गुणों के साथ उन्हें शूरता और वीरता के भाव भी प्राप्त करने होंगे। आधुनिक युग में उन्हें आत्म–रक्षा के भी उपाय सीख लेना आवश्यक हो गया है।'' यही बात गांधी इन शब्दों में कहते हैं – स्त्रियों के अधिकार के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं लगाया जाना चाहिए, जो पुरूषों पर न लगाया गया हो। पुत्रों और कन्याओं में किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिए। उनके साथ पूरी समानता का व्यवहार होना चाहिए। पुरूष और स्त्री की समानता का यह अर्थ नहीं है कि वे समान धंधे भी करें। स्त्री को शस्त्र–धारण करने या शिकार करने के खिलाफ कोई कानूनी बाधा नहीं होनी चाहिए। लेकिन जो काम पुरूष के करने के हैं, उनसे वह स्वभावतः विरत होगी। प्रकृति ने स्त्री और पुरूष को एक–दूसरे के पूरक रूप में सिरजा है। जिस तरह उनके आकार में भेद है, उसी तरह उनके कार्य भी मर्यादित हैं।

इसी बात को ओशो और विस्तार देते हुए कहते हैं – '' जब मैं कहता हूँ स्त्रियां भी शिक्षित होनी चाहिए तो मेरा मतबल यह नहीं है कि वे ठीक पुरूषों जैसी शिक्षा से शिक्षित हो जाएं, तब उपद्रव होगा। वैसा उपद्रव हो भी रहा है। अगर स्त्रियों को गणित में, तर्क में, व्यायाम में, फिजिक्स में, कैमेस्ट्री में, विज्ञान में ठीक पुरूषों जैसा शिक्षित कर दिया जाए तो इस सारी शिक्षा में उनके भीतर स्त्रैण तत्व का कोई हिस्सा मर जाता है। स्त्री की शिक्षा तो

होनी ही चाहिए पुरूष के बराबर लेकिन उसके अपने आयाम में। उसकी अपनी दिशा में। उसकी अपनी ही दिशा है। उस दिशा में अगर शिक्षा होगी तो ही सार्थक है। स्त्री को एक और तरह की शिक्षा चाहिए जो उसे संगीतपूर्ण व्यक्तिव दे, जो उसे नृत्यपूर्ण लयबद्ध व्यक्तिव दे; जो उसे प्रतीक्षा की अनंत क्षमता दे; जो उसे मौन की, चुप होने की, अनाक्रमक होने की, प्रेम की और करूणा की गहरी शिक्षा दे।'' ऐसी ही शिक्षा के लिए कृष्णमूर्ति यह कहते हैं कि – ''वास्तविक जीवन मूल्यों की खोज में व्यक्ति की सहायता करना ही शिक्षा का कार्य है और ये मूल्य पूर्वाग्रहविहीन अन्वेषण तथा आत्म–अवधान से ही आते हैं। जब आत्मबोध नहीं होता तो आत्म–अभिव्यक्ति अहंकार हो जाती है और उसके साथ उसके तमाम आक्रामक एवं महत्वकांक्षी द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं। शिक्षा का कार्य आत्म–अवधान की क्षमता को जाग्रत करना है, न कि तुष्टिकरण वाली आत्म–अभिव्यक्ति की वासना को अवसर देना।'' स्त्रियों के लिए ऐसी शिक्षा के सूत्र टैगोर तथा श्री अरविन्द आदि दार्शनिकों के शिक्षा–संबंधी विचारों में भी ढूंढे जा सकते हैं। हाँ! इस ढूंढने में यह समझ साफ होनी चाहिए कि ऐसे विचार स्त्रियों को न तो उनके अधिकारों से वंचित करते हैं और न उन्हें दोयम दर्जे का स्थान दिलाते हैं, बल्कि इसके विपरीत उन्हें अपने स्त्रीत्व की संपूर्ण गरिमा के साथ बाजार में बिकने से बचाते हुए समानता के अवसर और मुक्ति का अहसास देते हैं।

स्त्रियों के मानवाधिकार भी उन्हें समानता का अधिकार और मुक्ति का मसौदा उनके स्त्रीत्व की संपूर्ण गरिमा के साथ ही प्रदान करते हैं। उल्लेखनीय है कि मानव अधिकार, मानव को, मानव होने के नाते मिलने वाले अधिकारों की अवधारणा है। इसलिए इसमें मानव को मिलने वाले अधिकार उसके मानव होने की मुकम्मल गरिमा के साथ प्राप्त होते हैं। स्वभावतः इसमें स्त्री के मानव अधिकार भी ऐसी शिक्षा की हिमायत करते हैं जिससे उनके अस्तिव, उनके स्त्रीत्व और उनकी पहचान की सुरक्षा और संरक्षा के साथ उन्हें स्वतंत्रता और समानता का अधिकार प्राप्त हो सके। ऐसे अधिकार के लिए ही तो संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1948 में 30 अनुच्छेदों वाली मानव अधिकारों की जो सार्वभौम घोषणा की गई उसके 26वें अनुच्छेद में शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तिव का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं की प्रतिष्ठा को बढ़ाना रखा गया। यह अनुच्छेद तीन उप अनुच्छेदों में विभाजित है जो इस प्रकार हैं –

''अनुच्छेद 26 (1) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारंभिक और मौलिक अवस्था में निःशुल्क होगी। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकि (टेक्नीकल) और व्यावसायिक (कमर्शियल) शिक्षा की सामान्य उपलब्धि की व्यवस्था की जाएगी और योग्यता के आधार पर उच्च शिक्षा सभी समान रूप से प्राप्त कर सकेंगे। (2) शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तिव का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं की प्रतिष्ठा बढ़ाना होगा। शिक्षा द्वारा सभी राष्ट्रों और जनजातियों एवं धार्मिक

समूहों में सद्भाव, सहिष्णुता और मैत्री की अभिवृद्धि की जाएगी और शांति कायम रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यों को शिक्षा द्वारा बढ़ाया जाएगा।

(3) माता–पिता को अपनी संतान के लिए शिक्षा के प्रकार चुनने का अधिकार है।''

उल्लेखनीय है कि इस अनुच्छेद में अथवा घोषणा–पत्र के किसी अन्य अनुच्छेद में यदि अलग से स्त्रियों के लिए शिक्षा का कोई जिक्र नहीं है तो वह इसलिए कि यह घोषणा–पत्र लिंग के आधार पर कोई भेद–भाव नहीं करता। इसलिए जब वह प्रत्येक व्यक्ति के शिक्षा पाने के अधिकार की घोषणा करता है तो उसमें स्त्रियों के शिक्षा पाने का अधिकार भी अविभाज्य रूप से अंतर्निहित है। इसी आधार पर जब ब्राजील के प्रस्ताव पर स्त्रियों की स्थिति पर एक उप–आयोग के रूप में आयोग (Commission on the status of Women) जो आर्थिक और सामाजिक परिषद् का एक कार्यकारी आयोग है, की स्थापना हुई तो उसे जो अधिदेश (mandate) दिया गया उसमें परिषद् को दी जाने वाली संस्तुतियों और प्रतिवेदनों में राजनीतिक, आर्थिक, सिविल तथा सामाजिक के साथ–साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी स्त्रियों के अधिकार के संवर्धन हेतु संस्तुति और प्रतिवेदन देने का अधिदेश दिया गया। इसके बाद सन् 1962 में जब संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने स्त्रियों के विरूद्ध भेद–भाव की समाप्ति हेतु एक घोषणा का निर्णय लिया, जो 1967 में उद्घोषित हुई, तो उसमें स्वीकृत मुख्य अधिकारों में शिक्षा–संबंधी अधिकार भी शमिल हैं। इसमें अन्य अधिकार यथा राजनीतिक अधिकार, आर्थिक अधिकार और राष्ट्रीयता का अधिकार भी शामिल है। फिर संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने जब स्त्रियों की समानता और सार्वभौम मान्यता आदि के लिए सन् 1975 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया तो स्त्रियों का विश्व सम्मेलन 19 जून से 02 जुलाई 1975 तक मैक्सिको में आयोजित हुआ। इसमें महासभा ने दशक 1976–85 को स्त्रियों के लिए 'संयुक्त राष्ट्र दशक' घोषित किया। इस दशक का विश्व सम्मेलन जब 1980 में कोपेनहेगेन में आयोजित हुआ तो इस सम्मेलन की विषय–वस्तु यद्यपि 'समानता' विकास और शांति थी, किन्तु इसकी उप विषय वस्तु नियोजन, स्वास्थ्य और शिक्षा थी।

फिर स्त्रियों पर चौथा विश्व–सम्मेलन 04 से 15 सितम्बर, 1995 तक बीजिंग में आयोजित हुआ तो उसमें सरोकार के कई निर्णायक क्षेत्रों में स्त्रियों की शिक्षा और प्रशिक्षण भी था। इनके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणा–पत्र, मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा और मानवाधिकार की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं द्वारा जो अनेक अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेज और अभिसमय, संयुक्त राष्ट्रसंघ और विशिष्ट अभिकरणों के तत्वाधान में अंगीकार किए गए हैं, उनमें शिक्षा में भेदभाव के विरूद्ध अभिसयम 1960 भी अंगीकृत है। डॉ. टी.पी. त्रिपाठी इस अभिसमय के संबंध में लिखते हैं – ''शिक्षा में भेदभाव के विरूद्ध अभिसमय, संयुक्त राष्ट्र संघ, शैक्षिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक संगठन की सामान्य सभा (कान्फ्रेंस) द्वारा 14 दिसम्बर, 1960 को पेरिस में ग्यारहवें सम्मेलन में अंगीकार किया गया था। यह 22 मई 1962 को प्रभावी हुआ। अभिसयम शिक्षा के मामले में भेदभाव के लिए लिंग को एक अनुनज्ञेय (impermissible)

आधार मानता है। इस अभिसमय का प्रयोजन ऐसे भेदभाव, अंतर, अपवर्जन, सीमा या वरीयता जो लिंग पर आधारित हों और जिसका प्रभाव शिक्षा में समानता के व्यवहार को निष्प्रभावी करता हो, को कम करना होता है। शिक्षा पद का तात्पर्य हैः सभी प्रकार और स्तर की शिक्षा, और इसमें सम्मिलित हैं, शिक्षा में पहुंच, शिक्षा का स्तर (standard) और गुणवत्ता, और वे सभी शर्तें जिसके अंतर्गत यह दिया जाता है। ''

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों के शिक्षा–संबंधी मानव अधिकार उनके लिए ऐसी शिक्षा का प्रावधान करते हैं, जिसके द्वारा उन्हें ऐसी समानता और स्वतंत्रता मिले जिसमें उन्हें उपभोग का माध्यम बनते हुए बाज़ार में बिकने की बाध्यता न हो और जो पुरूषों के समान तो हो किन्तु उसमें पुरूषों का अनुकरण न हो ताकि स्त्रियां पुरूषों का प्रतिरूप बनने के बदले अपने स्त्रीत्व को मूल रूप में, पूर्ण गरिमा के साथ सुरक्षित रखते हुए स्वयं को विकसित कर सकें। इस विकास से ही वह मुक्त स्त्री सृजित होगी जो प्रेम, करूणा और सहिष्णुता से सराबोर होगी। फिर वह जो दुनिया बनायेगी उसमें शांति होगी, जो मनुष्यता निर्मित करेगी उसमें सह अस्तित्व होगा। (राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिर्पोट पर आधारित)

''जिंदगी!
तुम मुझे इस तरह बहलाने की कोशिश न करो –
यह वर्षों के खिलौने//बहुत नाजुक हैं जिसे भी हाथ लगाऊं//टुकड़ों में बिखर जाता है//अब इन मुंह चिढ़ाते टुकड़ों को//मैं उम्र किस तरह कह दूं// सखी, कोई तो टुकड़ा//फर्श को लाल कर दें।''

– पाश

संदर्भ

1. स्वामी विवेकानंद, शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर – 440012 (अष्टम)।
2. व्ही, पृष्ठ 41।
3. रविभूषण, सबकुछ बाजार नहीं है, प्रभात खबर, दीपावली विशेषांक 2012, 15 पी, कोकर इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची – 834001, पृष्ठ 7।
4. प्रभाकर श्रोत्रिय, स्त्रीः युद्ध का मोर्चा (संपादकीय), वागार्थ, अंक–32, नवम्बर, 1997, भारतीय भाषा परिषद्, 36 ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता – 700017।
5. अनिल सद्गोपाल, देशहित नहीं बाजार हित प्रमुख है, प्रभात खबर दीपावली विशेषांक 2011, पृष्ठ 147।
6. के. सच्चिदानंदन, भारतीय भाषा में हो सकता है शिक्षा का प्रसार, उपरिवत्, पृष्ठ 140–141।
7. ओशो, संभोग से समाधि की ओर, रजनीश धाम, 17 कोरेगांव पार्क, पूना – 411001, महाराष्ट्र, 1983, पृष्ठ 270।
8. व्ही, पृष्ठ 42–44।

सीखने–सिखाने की हकीकत

– कालूराम शर्मा

हाल ही में प्रकाशित असर यानी एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट स्कूली शिक्षा से जुड़े और इसमें दिलचस्पी रखने वाले या कहें कि चिंता करने वालों के लिए एक झटका कही जा सकती है। रिपोर्ट बताती है कि भारत जैसे देश में प्रारंभिक कक्षाओं के बच्चे पढ़ना और बुनियादी गणित भी नहीं सीख पा रहे हैं।

यह असर की तेरहवीं रिपोर्ट है, जो स्कूलों में सीखने–सिखाने की स्थिति बयान करती हैं। पढ़ना शिक्षित होने की पहली सीढ़ी कही जा सकती है। अगर बच्चे 'पढ़' नहीं पाते तो शिक्षा पाने का आगे का रास्ता समस्याओं से लदा होगा। इसी प्रकार गाणित में मूलभूत संक्रियाओं की समझ जीवन के लिए भी अपरिहार्य है। यों शिक्षा के उद्देश्य व्यापक हैं, जिनमें शामिल है संवैधानिक मूल्यों को भारतीय समाज में पोषित करना। बच्चे न केवल साक्षर बनें, बल्कि उनमें संवैधानिक मूल्यों को पोषित करने में स्कूल अहम भूमिका अदा करें। लिहाजा, असर ने अपने अध्ययन में भाषा और गणित के बुनियादी मसलों पर अध्ययन किया है।

इसमें कक्षा तीसरी, पांचवी और आठवीं स्तर के लगभग साढ़े पांच लाख बच्चों का देशव्यापी अध्ययन किया गया, जिसमें तीन से सोलह बरस के बच्चों के नामांकन और पांच से सोलह बरस के बच्चों में पढ़ने और अंकगणीतीय क्षमताओं को जांचा गया। यह अध्ययन देश के ग्रामीण क्षेत्रों से ताल्लुक रखता है। अध्ययन में दूसरी कक्षा के स्तर का पाठ तीसरी, पांचवी और आठवीं के बच्चों को दिया गया। इस पाठ को तीसरी कक्षा के पचीस फीसद बच्चे पढ़ पाए, जबकि कक्षा पांचवी के पचास फीसद और कक्षा आठवीं के तिहत्तर फीसद बच्चे पढ़ पाए।गणित में पांच से सोलह बरस के बच्चों से गिनती, घटाव और भाग वगैरह के सवाल पूछे गए। गणित में तीसरी कक्षा के 20.9 फीसद बच्चे सरल घटाव के सवाल हल नहीं कर पाते। पिछले अध्ययन की बनिस्बत पांचवी कक्षा में भाग के सवालों को हल करने वाले बच्चों का प्रतिशत थोड़ा बढ़ा है, जो छब्बीस से बढ़ कर 27.8 फीसद हो गया। कक्षा आठवीं के बच्चों के सकल प्रतिशत में कोई बदलाव नहीं आया है। अध्ययन के मुताबिक चौवालीस फीसद बच्चे ही तीन अंको में एक अंक की संख्या से भाग के सवाल हल कर पाते हैं।

पढ़ना सीखने का मामला पढ़ने के अभ्यास से जुड़ा है। पढ़ना कोई यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। हमारे यहां जिस तरह पढ़ने पर शिक्षक द्वारा काम किया जाता है उसमें पाठ्यपुस्तक ही आधार बनती है। जबकि पाठ्यपुस्तक पढ़ना सिखाने में योगदान कम ही कर पाती है। दरअसल, पाठ्यपुस्तक का जोर प्रश्नों के हल करने आदि पर अधिक होता है। भाषा शिक्षण के तमाम दस्तावेज कहते हैं कि पढ़ने के लिए बच्चों को बाल साहित्य उपलब्ध कराने की जरूरत है। स्कूलों में लाईब्रेरी की जरूरत है। लिहाजा, हम पढ़ने से केवल सतही अर्थ निकालने के आदी हैं। यों अक्षरों और शब्दों को पहचानना पढ़ना तो नहीं। पढ़ने का अर्थ है समझ कर पढ़ना। इस लिहाज से असर की रिपोर्ट से यह समझ में नहीं आता कि जो बच्चे पढ़ पा रहे हैं वे समझ भी पा रहे हैं कि नहीं। असर के इस अध्ययन में

स्कूलों से संबंधित और भी पहलुओं को टटोलने की कोशिश की गई है। इसमें बच्चों का नामांकन, चारदीवारी, बिजली, शौचालय, लाईब्रेरी, मिड–डे–मिल आदि शामिल है। ये तमाम कारक हैं जो स्कूली शिक्षा को प्रभावित करते हैं। 2018 में 25.8 फीसद ऐसे स्कूल पाए गए जहां लाईब्रेरी नहीं है। 37. 3 फीसद ऐसे स्कूल हैं जहां बच्चे लाईब्रेरी की पुस्तकों का इस्तेमाल नहीं करते। 36.9 फीसद स्कूलों में देखा गया कि बच्चे लाइब्रेरी की पुस्तकों का इस्तेमाल कर रहे हैं। कहा जा सकता है कि पढ़ने–लिखने की संस्कृति के लिए लाइब्रेरी को औजार के रूप में देखना अभी कोसों दूर लगता है।

बच्चों के सीखने का रिश्ता शिक्षकों की पेशवर तैयारी से है। शिक्षक की पेशेवर तैयारी के लिए शिक्षक–शिक्षा का ताना–बाना तो हमारे शिक्षा तंत्र द्वारा बुना गया है, मगर यह काफी लचर है। शिक्षक बनने के लिए पूर्व सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण मौजूद होना चाहिए। जो शिक्षक स्कूलों में अध्यापन करते हैं उनके लिए सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण का प्रावधान किया गया है। पर शिक्षकों की पेशेवर तैयारी – पूर्व सेवाकालीन और सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण – का मामला जोर नहीं पकड़ पा रहा है। शिक्षकों की तैयारी से पहले शिक्षक प्रशिक्षकों की तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। पर शिक्षक प्रशिक्षकों और शिक्षकों के बीच बराबरी स्थापित करने के संजीदा प्रयास नहीं होते। अगर शिक्षक प्रशिक्षक शिक्षकों को व्यावहारिक ज्ञान भाषणों से पढ़ाता है तो शिक्षक भी अपनी कक्षाओं में वैसा ही करेंगे और यही हो भी रहा है। खासकर विज्ञान जैसे विषय में मात्र यह कहते रहना कि यह करके सीखने का विषय है, मगर पढ़ाया भाषण देकर जाता है। यही हाल भाषा को लेकर है। खासकर प्राथमिक कक्षाओं में, जहां बच्चों को पढ़ाना–लिखना सिखाना एक महत्वपूर्ण कौशल है। मगर प्रशिक्षण संस्थानों में बच्चों को स्वतंत्र ढ़ंग से कैसे पढ़ना–लिखना सिखाया जाए इसके मौके नहीं मिलते। शिक्षा जगत में बच्चों में सृजनशीलता विकसित करने की बातें तो काफी होती हैं, मगर शिक्षकों की सृजनशीलता को बढ़ाने के प्रयास न के बराबर होते हैं। यही वजह है कि जिस भावना से शिक्षक प्रशिक्षक शिक्षकों को प्रशिक्षित करता है उसी भावना के साथ शिक्षक स्कूल में अपने बच्चों के साथ पेश आते हैं।

यशपाल समिति टिप्पणी करती है कि प्रशिक्षण की खामियों की वजह से विद्यालय में गुणात्मक ढ़ंग से सीखना–सिखाना कमजोर होता है। समिति सिफारिश करती है विद्यालयी शिक्षा की प्रासंगिकता को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षकों की पेशेवर तैयारी की सामग्री नए सिरे से बनानी चाहिए। वर्तमान स्कूली शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह संवैधानिक मूल्यों को भारतीय समाज में पोषित करने में कामयाब नहीं रही है। बल्कि शिक्षा ने हमारे समाज में विषमता को बढ़ाया ही है। बच्चे, सूचनाओं के बोझ तले दबे हुए हैं। शिक्षकों को दकियानूसी तौर–तरीकों से बाहर निकलने के अवसर कम ही मिल पा रहे हैं कि वे बच्चों को सूचनाओं की घुट्टी पिलाने के बजाय उन्हें अर्थपूर्ण सीखने की ओर प्रेरित कर सकें।

स्कूलों में गुणात्मक सुधार तभी हो पाएगा, जब शिक्षकों में उन दक्षताओं का विकास किया जाए, जो बच्चों को सिखाने के लिए जरूरी होती हैं। शिक्षक प्रशिक्षणों की सबसे बड़ी समस्या है इनका एकरेखीय होना। अनुभव बताते हैं कि एक जैसे प्रशिक्षण पाकर शिक्षक ऊब जाते हैं। अधिकतर शिक्षक प्रशिक्षणों का आयोजन यह समझे बिना ही किया जाता है कि शिक्षकों की आवश्यकता क्या है? अगर इसे समझ भी लिया जाता है तो इसके वे पहलू नजरंदाज हो जाते हैं, जो शिक्षक को बच्चों के साथ

आजमाने होते हैं। शिक्षकों की तैयार के पूर्व शिक्षक प्रशिक्षकों की तैयारी अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षक प्रशिक्षकों व शिक्षकों के बीच गहरी खाई बनी हुई है। यहां बराबरी स्थापित करने के संजीदा प्रयास करने की जरूरत है। शिक्षा जगत में बच्चों में सृजनशीलता विकसित करने की बातें तो काफी होती हैं, मगर शिक्षकों की सृजनशीलता बढ़ाने के प्रयास न के बराबर होते हैं। यही वजह है कि जिस भावना से शिक्षक प्रशिक्षक शिक्षकों को प्रशिक्षित करता है उसी भावना के साथ शिक्षक स्कूल में अपने बच्चों के साथ पेश आते हैं। (साभार दैनिक जागरण)

PROUDH SHIKSHA

Form IV

Place of Publication	Indian Adult Education Association 17-B, Indraprastha Estate New Delhi – 110 002
Periodicity of Publication	Quarterly
Printer's name Nationality Address	Dr. Madan Singh Indian 17-B, Indraprastha Estate New Delhi – 110 002
Publisher's name Nationality Address	Dr. Madan Singh Indian 17-B, Indraprastha Estate New Delhi – 110 002
Editor's name Nationality Address	Dr. Madan Singh Indian 17-B, Indraprastha Estate New Delhi – 110 002
Name and address of individuals who own the newspaper and partners or shareholders, holding more than one percent of the total capital	Indian Adult Education Association 17-B, Indraprastha Estate New Delhi – 110 002

I, Dr. Madan Singh, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated: 19-1-2019

Sd/
Dr. Madan Singh
Publisher

gekj y[kd

ohjUn tu
सहायक प्राध्यापक
ओरियंटल विश्वविद्यालय
इन्दौर,
मध्य प्रदेश

dYiuk dkf'kd
संयुक्त निदेशक
भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ
नई दिल्ली

i"ik frokjh
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
इन्स्टीट्यूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज
शिवपुरी लिंक रोड
ग्वालियर (म.प्र.)

l/kk ryx
टी–2, सिमरन एपार्टमेंट–II
प्लांट 16–17, त्रिलंगा,
भोपाल (म.प्र.)